भारतीय ज्ञानपरम्परा आधारित

संस्कृति बोधमाला ६

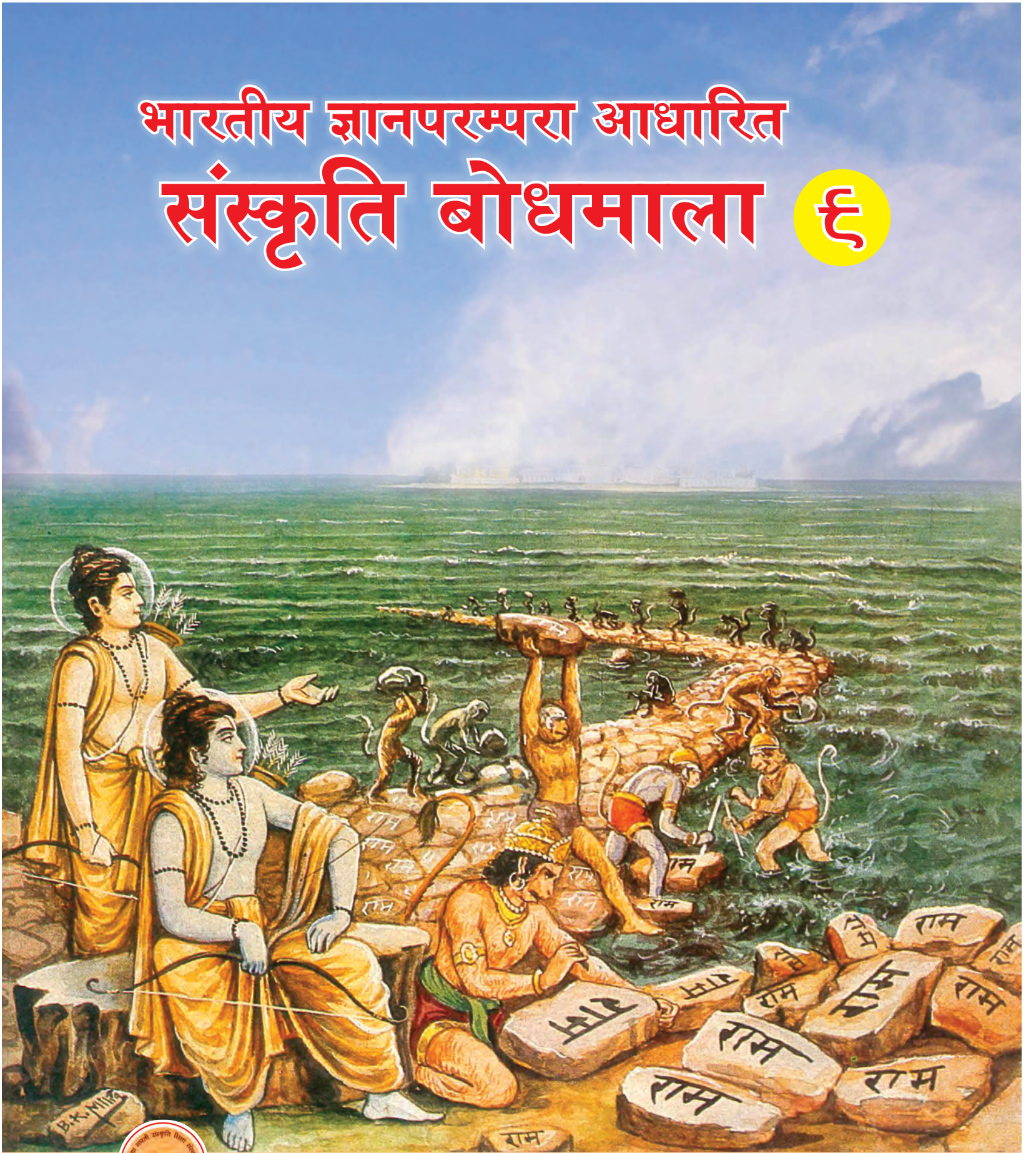

प्रकाशक : विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र

विद्या भारती
अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान
हमारा लक्ष्य
इस प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करना है जिसके द्वारा ऐसी युवा-पीढ़ी का निर्माण हो सके जो हिन्दुत्वनिष्ठ एवं राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत हो, शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो तथा जो जीवन की वर्तमान चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सके और उसका जीवन ग्रामों वनों, गिरिकन्दराओं एवं झुग्गी-झोपड़ियों में निवास करने वाले दीन-दुःखी अभावग्रस्त अपने बान्धवों को सामाजिक कुरीतियों, शोषण एवं अन्याय से मुक्त कराकर राष्ट्र जीवन को समरस, सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए समर्पित हो।

ॐ

मंगलाचरण

हम प्रतिदिन रामायण गाएँ, श्री रघुवर के गुण अपनाएँ।
घर–घर अवध धाम बन जाएँ, भक्ति भाव से शीश झुकाएँ।।

राष्ट्र गीत - वन्दे मातरम्

प्रस्तुत राष्ट्रगीत भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (चटर्जी) द्वारा रचित 'आनंदमठ' पुस्तक से उद्धृत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यही गीत क्रांतिकारियों का प्रेरणा मंत्र रहा है।

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्,
शस्य श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम् ॥१॥
शुभ्र-ज्योत्स्नां-पुलकित-यामिनीम्,
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्,
सुहासिनीं, सुमधुर-भाषिणीम्,
सुखदां, वरदां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥२॥
कोटि-कोटि-कंठ कल-कल-निनाद-कराले,
कोटि-कोटि-भुजैर्धृत-खर-करवाले,
अबला केनो माँ एतो बले,
बहुबल-धारिणीं, नमामि तारिणीम्,
रिपुदल-वारिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥३॥
तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे, बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे। वन्दे मातरम् ॥४॥
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणीम्,
कमला कमल-दल-विहारिणीम्,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥५॥
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्,
धरणीं भरिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥६॥

भारत माता की जय।

प्रकाशकीय

परमोच्च सत्य का सन्धान, आख्यान और व्यवहार संस्कृति है। आसेतुहिमाचल, इस भूमि पर अपनी सारस्वत साधना से इस सत्य का साक्षात् दर्शन कर हमारे पूर्वज मनीषियों ने ऋषि पद प्राप्त किया। वेद एवं उपनिषद् आदि वाङ्मय के रूप में उन्होंने इसकी अभिव्यक्ति की। इस पृथ्वीतल एवं समस्त ब्रह्माण्ड की प्राकृतिक शक्तियों की देवरूप में मनोरम स्तुति तथा जीवन के गूढ़ रहस्यों का, विविध आख्यान-उपाख्यानों के माध्यम से, तात्त्विक कथन आदि ने इसके स्वरूप को गढ़ा। इनके आधार पर जिन जीवनमूल्यों (दर्शन), जीवन व्यवहार (धर्म) का विकास हुआ उसे भारतीय संस्कृति के नाम से अभिहित किया गया। 'सत्य संकल्प प्रभु' राम, गीता के आख्याता श्रीकृष्ण एवं कण-कण में रमे शिवशंकर 'संस्कृति पुरुष' बने।

सत्य शाश्वत है, कालजयी है, इसलिए उसका प्रवाह चिरन्तन होता है। सत्य को वहन करने वाली संस्कृति की गति कभी मृदु, मंद, मंथर उर्मियों से युक्त होती है तो आवश्यकता होने पर इसमें उत्ताल तरंगें भी उठती हैं। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ने इसे विविधावर्णी बनाया। श्रीमद् शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य प्रभृत्ति तत्त्ववेत्ताओं के दार्शनिक सूत्रों के साथ उस तत्त्व के रसरूप (रसो वै सः) के प्रति भक्तिपरक स्तोत्रों ने इसमें माधुर्य का संयोग किया। पुराण साहित्य तो भक्ति का अगाध समुद्र ही है। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता- इस प्रस्थानत्रयी में श्रीमद्भागवत जुड़कर प्रस्थान चतुष्टय हुआ, जिसने मस्तिक और हृदय-तत्त्वचिन्तन और भक्ति की समन्वित धारा को गति प्रदान की। पूरे इतिहास फलक पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि लम्बे संघर्षकाल में- प्रारंभ से अन्त तक- इन्हीं ग्रन्थों में ग्रथित तत्त्वदर्शन का युगीन, समकालीन व्याख्यान हमें प्रेरणा देता रहा है।

देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भारतभूमि, राष्ट्र का भारतमाता के रूप में चिरंतन दर्शन एक ओर, तो दूसरी ओर 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर सम्पूर्ण जगती के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव, भारतीय संस्कृति का मूल है। 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' (महाभारत), 'सबार ऊपर मानुष सत्य, ता ऊपर किछु नाहीं (चण्डीदास) कहकर मनुष्य मात्र को इस संस्कृति ने अपने केन्द्र में रखा तो जीवमात्र और उससे भी आगे बढ़कर चेतन के साथ जड़ को भी जोड़कर यह संस्कृति अनन्त विस्तार पाती है। छोटे से छोटा (अणोरणीयान्) और बड़े से बड़ा (महतो महीयान्), सब कुछ को यह अपनी परिधि में समाहित कर लेती है। आध्यात्मिकता, सांसारिकता, शाश्वत धर्म, सामयिक कर्त्तव्य, सुरज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वय, पुरुषार्थ चतुष्टय, व्यवहार के स्तर पर आन्तरिक शुचिता और बाह्यशुद्धि आदि विचार इसकी श्रेष्ठता है। इस सबका आख्यान करने वाले रामायण, महाभारत हमारे 'संस्कृति ग्रन्थ' हैं।

संस्कृति का यह प्रवाह अबाध व निरन्तर बना रहे, इसकी आवश्यकता आज बड़ी तीव्रता से अनुभव में आती है। यह नई पीढ़ी तक पहुँचे, नई पीढ़ी को इसका सम्यक, सुष्ठु और सर्वाङ्ग बोध हो, इस उद्देश्य से विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान इस संस्कृति बोधमाला का प्रकाशन कर रहा है। भावीपीढ़ी 'संस्कृति दूत' बनकर मानवता की सेवा कर सकें, दिशा दे सकें तो हम कृतकार्य होंगे।

संस्कृति बोधमाला को तैयार करने के लिए विद्या भारती के अनेक कार्यकर्ताओं ने सब प्रकार का अनवरत परिश्रम किया है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इसमें उपयोग किए गए चित्रों के रचनाकार निश्चय ही हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में इसमें सहयोग मिला, उनका विनम्र आभार...

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	**हमारी भारतमाता** कुम्भस्थल, द्वादश ज्योतिर्लिंग, शक्तिपीठ, ।	५
२.	**हमारा भारत राष्ट्र** राष्ट्र अर्थात् क्या?, अखण्ड भारत, एकात्मतास्तोत्रम्, नागरिक कर्तव्य, अग्रिम पंक्ति का योद्धा- हरिगोपाल बल।	१०
३.	**हमारी भारतीय संस्कृति** हमारी परम्पराओं के वैज्ञानिक आधार।	१७
४.	**हमारी परिवार व्यवस्था** भारतीय भाषाएँ, स्वदेशी अपनायें - देश बचायें, गीत-गौरवशाली परम्परा, संतवाणी।	१९
५.	**हमारी ज्ञान परम्परा** एकात्ममानव दर्शन, प्राचीन गुरुकुल शिक्षा, नालन्दा विश्वविद्यालय, मदुरै विद्यापीठ, पुनर्जन्म व पूर्वजन्म, श्रीरामचरितमानस प्रसंग, श्रीमद्भगवद्गीता, व्यवहार कुशलता, उत्तम मित्र के लक्षण।	२३
६.	**हमारी वैज्ञानिक परम्परा** भारतीय कालगणना, भारतीय चिकित्साशास्त्र, भारतीय विद्याएँ, भारतीय संगीत की देन, कृषि विज्ञान, भौतिक विज्ञान।	३१
७.	**हमारा गौरवशाली अतीत** हमारे विजेता सम्राट, स्वतन्त्र भारत पर थोपे गए युद्ध, वन्दे मातरम् की गाथा, हमारे बालवीर।	३९
८.	**हमारी संस्कृति का विश्व संचार** शून्य का आविष्कार : विश्व को भारत का उपहार, भारत का ननिहाल : कैकेय देश, भारतीय योग की विश्व को देन, खगोल विज्ञान की देन, विश्वबन्धुत्व, भारत की विश्व को देन : वैदिक गणित के सूत्र।	४४

---

१. हमारी भारतमाता

fon'kh;&foKk tuk ;L; dhfr ijk Kku&foKku;k% o.k;fUrAA
lo)% lfl)% le)% çfl)% l n'k% lnk oèkrk Hkkjrk[;%AA

वैदेशिक विद्वान भी जिसकी करते हैं सद्कीर्ति बखान।
अति प्राचीन, प्रसिद्ध, सिद्ध, समृद्ध जहाँ विज्ञान-ज्ञान।
उसी सनातन हिन्दुराष्ट्र की सतत प्रगति सब विधि होवे
ऐसी शुभकामना, भावना पूरी करें सदा भगवान।

कुम्भस्थल

भारतीय धर्म-संस्कृति में कुम्भ महत्त्वपूर्ण पर्व है। कुम्भ के स्थान पुरातन समय से निर्धारित हैं। देवों और दानवों द्वारा सामूहिक प्रयास से समुद्र मन्थन का कार्य सम्पन्न हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप १४ रत्न निकले। इसमें भगवान् धन्वन्तरि अमृतकलश लेकर प्रकट हुए थे। अमृत वितरण में विवाद होने पर पक्षीराज गरुड़ अमृतकलश (कुम्भ) लेकर उड़ गए। यह मान्यता है कि पक्षीराज गरुड़ ने हरिद्वार, प्रयागराज, उज्जैन और नासिक में अमृतकलश को रखा। जहाँ-जहाँ भी अमृतकलश रखा गया वहाँ अमृत की कुछ बून्दें छलकीं जिससे वह स्थान पवित्र हुआ। इन्हीं चार स्थानों पर कुम्भपर्व का आयोजन होता है जोकि समाज में सामूहिक सद्भाव, सहयोग, सहजीवन एवं समरसता का विश्व में अद्भुत उदाहरण है। कुम्भ मेलों के आयोजन स्थलों के विषय में संक्षिप्त जानकारी निम्नानुसार है –

(क) हरिद्वार – देवतात्मा हिमालय की शिवालिक पर्वतशृंखला में उत्तराखण्ड राज्य में हरिद्वार स्थित है। प्राचीन ग्रन्थों में इसे मायापुरी, गंगाद्वार और मोक्षद्वार भी कहा गया है। यहीं प्रजापति दक्ष का यज्ञस्थल कनखल स्थित है। आसपास सप्तसरोवर, मनसा देवी, भीमगौड़ा, ऋषिकेश, हर की पौड़ी एवं लक्ष्मण झूला आदि तीर्थ हैं। धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु स्थापित संस्थान शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस्, भारतमाता मन्दिर एवं पतंजलि योगपीठ यहीं हैं। यहीं पर गंगा, पर्वतीय क्षेत्र से निकलकर मैदानी भू-भाग में प्रवेश करती है। गंगा की प्रवाहमयी छवि आकर्षक और भक्तिभाव जाग्रत करने वाली है। तपस्वियों के लिए साधना हेतु यह स्थान अत्यधिक उपयुक्त है। इस पवित्र धार्मिक नगरी में हर १२ वर्ष में जब सूर्य मेष राशि में एवं बृहस्पति कुम्भ राशि में प्रवेश करते हैं, कुम्भ मेले का आयोजन होता है –

पद्मिनी नायके मेषे कुम्भराशि गते गुरौ।
गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनाम तदोत्तमम्॥ (कृत्यमंजरी)

(ख) प्रयागराज – यहाँ गंगा एवं यमुना का प्रत्यक्ष तथा अन्तःसलिला सरस्वती अर्थात् गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम स्थल है। प्रयाग को तीर्थराज कहा जाता है। मकर संक्रान्ति अर्थात् सूर्य के मकर राशि में तथा बृहस्पति के मेष राशि में स्थित होने पर कुम्भ का आयोजन होता है –

मेषराशिं गते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावस्यां तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥

अनेक ऋषि, मुनि एवं तपस्वियों की यह भूमि सदियों से श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र है। प्रतिवर्ष संगम तट

पर माघ मेला आयोजित होता है, जिसमें हजारों श्रद्धालु पूरे माघ मास में गंगातट पर निवास कर धर्मसाधना करते हैं। इसे कल्पवास कहते हैं।

(ग) उज्जैन – शिप्रा नदी के पावन तट पर महाकाल की नगरी उज्जैन स्थित है। यहाँ कई ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्त्व के धार्मिक स्थल हैं। यहाँ भर्तृहरि की तप:स्थली तथा श्रीकृष्ण-सुदामा की शिक्षास्थली सान्दीपनि आश्रम हैं। वर्तमान उज्जैन के प्राचीन नाम उज्जयिनी, अवन्तिका और विशाला रहे हैं। यहाँ पर सिंहस्थ कुम्भ चैत्र मास की पूर्णिमा से वैशाख पूर्णिमा तक आयोजित होता है। उज्जैन के इस महापर्व के लिए १० योग पारम्परिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। मेष राशि में सूर्य और सिंह राशि में बृहस्पति की स्थिति होने पर उज्जैन में कुम्भ होता है। यह स्थिति वैशाख मास की पूर्णिमा को होती है –

मेषराशिं गते सूर्ये सिंहराश्यां बृहस्पतौ।
अवन्तिकायां भवेत्कुम्भः सदा मुक्तिप्रदायकः॥

(घ) नासिक – त्रेतायुग में श्रीराम ने माता सीता एवं लक्ष्मण सहित यहीं पंचवटी में वनवास का कुछ समय बिताया था। यहाँ द्वादश ज्योतिर्लिंग में से एक 'त्र्यम्बकेश्वर' स्थित है। जब अमावस्या तिथि को सिंह राशि में गुरु और सूर्य हों तब गोदावरी तट पर नासिक (महाराष्ट्र) में कुम्भयोग होता है –

सिंहराशिं गते सूर्ये सिंहराश्यां बृहस्पतौ।
गोदावर्यां भवेत्कुम्भो भक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

द्वादश ज्योतिर्लिंग

ज्योतिर्लिंग का शाब्दिक अर्थ है 'प्रकाश का लिंग (चिह्न)'। पुराणों के अनुसार शिव जी जहाँ-जहाँ स्वयं प्रकट हुए उन स्थानों पर स्थित शिवलिंग को ज्योतिर्लिंग के रूप में पूजा जाता है। विष्णुपुराण एवं शिवपुराण आदि में ज्योतिर्लिंग की कथा का उल्लेख है। इन १२ ज्योतिर्लिंगों का वर्णन इस श्लोक में है–

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालम्ॐकारममलेश्वरम्॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमाशंकरम्।
सेतुबंधे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यंबकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारम् घुष्मेशं च शिवालये॥३॥
एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥४॥

१. **सोमनाथ ज्योतिर्लिंग** – सोमनाथ मन्दिर गुजरात में प्रभास पाटन वेरावल में स्थित है। यह हिन्दुओं के सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में से एक और शिव के बारह ज्योतिर्लिंग मन्दिरों में से पहला है। सोमनाथ का अर्थ है 'सोम' अर्थात् 'चन्द्रमा' के आराध्य। १०२६ ईस्वी में, भीम प्रथम के शासनकाल के दौरान गजनी के तुर्क शासक महमूद ने सोमनाथ मन्दिर पर हमला किया और अकूत सम्पत्ति की लूट की। सरदार वल्लभभाई पटेल के सत्प्रयत्नों से स्वतन्त्र भारत में यहाँ भव्य पुनर्निर्माण हुआ।

२. **मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग** – श्री भ्रमराम्बा-मल्लिकार्जुन मन्दिर या श्रीशैलम् मन्दिर भगवान् शिव और माता पार्वती को समर्पित है। शिवपुराण के अनुसार मल्लिकार्जुन शिव और पार्वती, दोनों का संयुक्त रूप है। मल्लिका देवी पार्वती का द्योतक है और अर्जुन भगवान् शिव को संदर्भित करता है। मन्दिर का निर्माण १२३४ ई. के आस-पास होयसल राजा वीर नरसिम्हा द्वारा किया गया था। यह मन्दिर वास्तुकला की द्रविड़ शैली का सुन्दर उदाहरण है।

३. **महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग** – महाकालेश्वर मन्दिर मध्यप्रदेश राज्य के उज्जैन नगर में स्थित है। महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग भारत में सात मुक्ति स्थलों में से एक है। महाकाल दो शब्दों महा (शिवजी का गुण) और काल (समय) से मिलकर बना है। मराठों के शासनकाल में यहाँ महाकालेश्वर मन्दिर का पुनर्निर्माण और ज्योतिर्लिंग की पुनः प्रतिष्ठा हुई तथा सिंहस्थ पर्व-स्नान पुनः प्रारम्भ हुआ।

४. **ॐकारेश्वर ज्योतिर्लिंग** – ॐकारेश्वर मन्दिर मध्यप्रदेश के खण्डवा जिले में नर्मदा नदी के बीच मन्धाता या शिवपुरी नामक द्वीप पर स्थित है। यह द्वीप 'ॐ' के आकार में है। यहाँ दो मन्दिर ॐकारेश्वर व अमलेश्वर हैं। यह दूसरा ज्योतिर्लिंग ममलेश्वर भी कहा जाता है लेकिन शतरुद्रकोटि संहिता में अमलेश्वर ज्योतिर्लिंग व ओंकार क्षेत्र का नाम है। ॐकारेश्वर का निर्माण नर्मदा नदी से स्वतः ही हुआ है।

५. **वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग** – वैद्यनाथ मन्दिर भारत के झारखण्ड राज्य के देवघर नामक स्थान में अवस्थित है। भगवान् शिव जी का एक नाम वैद्यनाथ भी है, इस कारण लोग इसे 'वैद्यनाथ धाम' भी कहते हैं। यह सिद्धपीठ है इस कारण इस लिंग को 'कामना लिंग' भी कहा जाता है। हर वर्ष सावन के महीने में श्रावण मेला लगता है जिसमें लाखों श्रद्धालु 'बोल बम! बोल बम!' का जयकारा लगाते हुए अजगैबीनाथ मन्दिर, सुल्तानगंज से पवित्र गंगा जल लेकर अत्यन्त कठिन पैदल यात्रा कर बाबा बैद्यनाथ को जल चढ़ाते हैं। एक अन्य मान्यता के अनुसार महाराष्ट्र में छत्रपति संभाजीनगर के निकट स्थित परली बैजनाथ को भी बैद्यनाथ धाम कहा जाता है।

६. **भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग** – भीमाशंकर मन्दिर महाराष्ट्र में भोरगिरि गाँव खेड़ा से ५० किमी उत्तर-पश्चिम पुणे में पश्चिमी घाट के सह्याद्रि पर्वत पर स्थित है। यहीं से भीमा नदी भी निकलती है जो दक्षिण-पश्चिम दिशा में बहती हुई रायचूर जिले में कृष्णा नदी से जा मिलती है। यह शिवलिंग काफी मोटा (स्थूल) है जिसके कारण इन्हें 'भीमशंकर' या 'मोटेश्वर महादेव' कहा जाता है।

श्रीभीमाशंकर ज्योतिर्लिंग, पुणे

७. **रामेश्वरम् ज्योतिर्लिंग** – रामेश्वरम् तमिलनाडु के रामनाथपुरम् जिले में स्थित है। यह चार धामों में से एक है। यह हिन्दु महासागर और बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ सुन्दर शंख आकार का द्वीप है। लंका पर विजय के लिए जाते हुए भगवान् श्रीराम ने इस शिवलिंग की स्थापना की थी।

८. **नागेश्वर ज्योतिर्लिंग** – नागेश्वर मन्दिर गुजरात राज्य में द्वारका के निकट दारुकवन क्षेत्र में स्थित होने की मान्यता है। किन्तु नागेश्वर ज्योतिर्लिंग होने के दावे जिन दो अन्य स्थानों पर किए जाते हैं, उनमें से एक आंध्रप्रदेश में अवदा गाँव में है तथा दूसरा उत्तराखण्ड राज्य में अल्मोड़ा से सत्रह मील दूर जागेश्वर नामक तीर्थ बताया जाता है।

९. **काशी विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग** – काशी विश्वनाथ मन्दिर उत्तर प्रदेश के प्राचीन नगर काशी, वाराणसी या बनारस में पवित्र गंगा नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है। यहाँ भगवान शिव को श्री विश्वनाथ और विश्वेश्वर के नाम से जाना जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है ब्रह्माण्ड के स्वामी। विश्वनाथ मन्दिर को मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा बार-बार तोड़ा गया। मुगल शासक औरंगजेब इस मन्दिर को गिराने वाला अन्तिम मुस्लिम शासक था जिसने मन्दिर के स्थान पर वर्तमान ज्ञानवापी मस्जिद का निर्माण कराया।

१०. **त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग** – त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग मन्दिर महाराष्ट्र प्रान्त के नासिक जिले में त्र्यम्बक गाँव में है। यहाँ के निकटवर्ती ब्रह्मगिरि नामक पर्वत से गोदावरी नदी का उद्गम है। गौतम ऋषि तथा गोदा की प्रार्थनानुसार भगवान् शिव ने इस स्थान में वास करने की कृपा की और त्र्यम्बकेश्वर नाम से विख्यात हुए। मन्दिर के अन्दर एक ही जलहरी में तीन छोटे-छोटे लिंग हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव के प्रतीक माने जाते हैं।

११. **केदारनाथ ज्योतिर्लिंग** – भारत के उत्तराखण्ड राज्य के रुद्रप्रयाग जिले में हिमालय पर्वत की गोद में स्थित केदारनाथ मन्दिर ज्योतिर्लिंग के साथ उत्तराखण्ड के चार धाम (गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारधाम व बदरीनाथ) और पंचकेदार में से भी एक है। अत्यन्त शीतल जलवायु के कारण यह मन्दिर अप्रैल से नवम्बर माह के मध्य ही दर्शन के लिए खुलता है। इसका निर्माण पाण्डवों के पौत्र महाराजा जन्मेजय ने कराया था। यहाँ स्थित स्वयम्भू शिवलिंग अति प्राचीन है। तीन पर्वतों से होकर बहने वाली पाँच नदियाँ हैं मन्दाकिनी, मधुगंगा, चिरगंगा, सरस्वती और स्वरन्दरी। यह क्षेत्र 'मन्दाकिनी नदी' का जलसंग्रहण क्षेत्र है।

१२. **घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग** – महाराष्ट्र में छत्रपति संभाजी नगर के निकट घृष्णेश्वर महादेव का मन्दिर स्थित है। इसे घुष्मेश्वर के नाम से भी पुकारते हैं जो प्रसिद्ध शिवभक्तिनी घुष्मा के आराध्य होने के कारण पड़ा। इस मन्दिर का निर्माण देवी अहिल्याबाई होल्कर ने करवाया था।

शक्तिपीठ

पिता दक्ष के यज्ञोयोजन में न देख शिव का सम्मान।
क्रुद्ध सती उस यज्ञकुण्ड में ही कर बैठी अग्निस्नान॥
लिये सती का शव काँधे पर रहे घूमते शिव भगवान।
शव विच्छेद कर दिया हरि ने चक्रसुदर्शन कर संधान।
जहाँ-जहाँ वे अंग गिरे थे बने शक्ति संस्थान महान।
हुए प्रसिद्ध वही इक्यावन 'शक्तिपीठ' बन सिद्ध स्थान॥

बंगाल में स्थित शक्तिपीठ –

१.	कालिका शक्तिपीठ	कोलकाता में गंगा किनारे कालीघाट
२.	युगाधा शक्तिपीठ	वर्द्धमान में हुगली क्षीरग्राम
३.	त्रिस्तोता शक्तिपीठ	जलपाईगुड़ी शालवाड़ी ग्राम में तीस्ता नदी के किनारे
४.	बहुला शक्तिपीठ	कटवा, केतुब्रह्म या केतुग्राम
५.	वक्त्रेश्वरी शक्तिपीठ	दुब्राजपुर से ७ मील उत्तर में वक्त्रेश्वर के पास
६.	नलघटी शक्तिपीठ	सेन्थिया से ४२ कि.मी. दूर दक्षिण में

७.	नंदीपुर शक्तिपीठ	सेन्थिया से दक्षिण पूर्व में
८.	अट्टहास शक्तिपीठ	वर्द्धमान से ९३ कि.मी. लाबपुर के पास
९.	किरीट शक्तिपीठ	लालबाग बड़नगर, हुगली के किनारे
१०.	यशोर शक्तिपीठ	खुलना (बांग्लादेश) के जैस्सोर शहर में
११.	करतोया तट शक्तिपीठ	बांग्लादेश के भवानीपुर ग्राम में
१२.	चट्टल शक्तिपीठ	बांग्लादेश के चटगांव से ३८ कि.मी. चन्द्रेश्वर पर्वत पर
१३.	सुगंधा शक्तिपीठ	बांग्लादेश के शिकारपुर ग्राम में सुगन्धा नदी के तट पर
१४.	विभाष शक्तिपीठ	प.बं. के मिदनापुर के ताम्रलुक में रूपनारायण नदी के तट पर

मध्य प्रदेश में स्थित शक्तिपीठ

१५.	भैरव पर्वत शक्तिपीठ	उज्जैन में क्षिप्रा किनारे। दूसरी मान्यता से गुजरात में गिरनार
१६.	उज्जयिनी शक्तिपीठ	उज्जैन में हरसिद्धि। मतान्तर से सौराष्ट्र में हरसिद्धि
१७.	रामगिरि शक्तिपीठ	मैहर का शारदा मन्दिर
१८.	शोण शक्तिपीठ	अमरकण्टक में शोणाक्षी मन्दिर

तमिलनाडु में स्थित शक्तिपीठ

१९.	शुचि शक्तिपीठ	कन्याकुमारी से १३ कि.मी. शुचीन्द्रम में
२०.	रत्नावली शक्तिपीठ	चेन्नै के पास
२१.	कन्यकाश्रम शक्तिपीठ	कन्याकुमारी का भद्रकाली मन्दिर
२२.	काञ्ची शक्तिपीठ	शिवकाँची में कामाक्षी मन्दिर

बिहार में स्थित शक्तिपीठ

२३.	मिथिला शक्तिपीठ	उच्चैन मन्दिर/उग्रताप/जयमंगला (मतान्तर से)
२४.	वैद्यनाथ शक्तिपीठ	देवघर
२५.	मगध शक्तिपीठ	पटना का पटनेश्वरी मन्दिर

शेष शक्तिपीठों का परिचय अगली कक्षा में प्राप्त करेंगे।

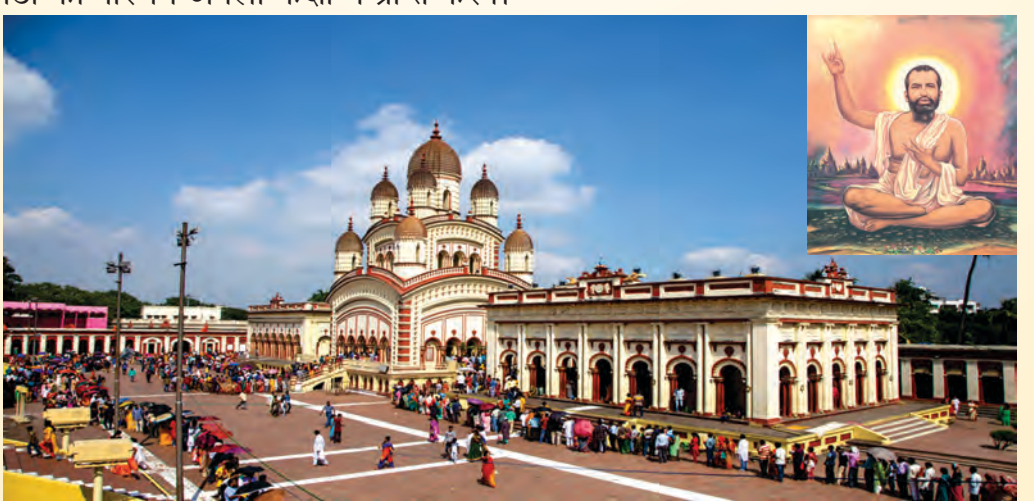

काली मन्दिर, कोलकाता

२. हमारा भारत राष्ट्र

Hkæ bPNUr _"k;% Lofon% rikn h{kkmi In% mxA
rrk jk"Vcy vkt 'p tkre rLe nokmi IUueUrAA – अथर्ववेद

आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के प्रारम्भ में जो दीक्षा लेकर तप किया उससे राष्ट्र का निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल व ओज भी प्रगट हुआ। इसलिए सब विबुध इस राष्ट्र के सामने नत होकर इसकी सेवा करें।

राष्ट्र अर्थात् क्या?

इस शब्द के निहितार्थ को समग्रता में समझने का प्रयत्न करते हैं। राष्ट्र के प्रति भक्ति के कारण समाज को संगठित करना, संस्कारित होना, बिना स्वार्थ के कार्य करना - किन्तु प्रश्न है, किसके लिए? उत्तर है, राष्ट्र के लिए। राष्ट्र है क्या? कुछ लोग कह सकते हैं, राष्ट्र अर्थात् देश। उनका यह उत्तर गलत नहीं है, किन्तु उत्तर पूर्ण भी नहीं है। एक और कथन है- राष्ट्र अर्थात् राज्य, लेकिन यह उत्तर भी सही नहीं। वास्तव में राष्ट्र अर्थात् जन या लोग। लोग किसी न किसी भौगोलिक सीमा में रहते हैं, अतः राष्ट्र का सीधा संबंध देश से रहता है, जैसे मछली और पानी का उदाहरण लें, जबकि पानी अलग है, मछली अलग है। राज्य एक राजकीय व्यवस्था है जो कि बदलती रहती है। कभी तानाशाही, कभी राजव्यवस्था, सैनिक सत्ता या प्रजातंत्रीय प्रणाली। किन्तु इन स्थूल परिवर्तनों के कारण राष्ट्र का सूक्ष्म स्वरूप परिवर्तित नहीं होता। राष्ट्र अर्थात् लोग, तो प्रश्न उठता है कि किन लोगों से राष्ट्र बनता है?

उसके लिए तीन अनिवार्य शर्ते हैं। पहली शर्त है– जिस भूभाग में वे लोग रहते हैं उसके बारे में उनके क्या विचार हैं? वे उस धरा-भाग को मातृभूमि मानते हैं या भोग-भूमि? यूँ तो हर देश की भूमि कंकड़-पत्थर से युक्त निर्जीव वस्तु है परन्तु उसे माता कहते ही भाव रूपांतरित होकर, वह जीवन्त अनुभव होने लगती है, वन्दनीय हो जाती है। जिन्हें अपनी मातृभूमि का वन्दन करने में प्रसन्नता और गर्व का अनुभव होता है, ऐसे सामूहिक सर्व स्वीकृति रखने वाले लोगों का राष्ट्र बनता है।

दूसरी शर्त है - अनेकानेक वर्षो से एक भू-भाग पर निवास करते आ रहे लोगों का एक इतिहास बनता है। इतिहास में अनेक दुखद व सुखद घटनाएँ होती हैं। इन ऐतिहासिक घटनाओं का स्मरण या श्रवण करते हुए जिनके मन में समान भाव का जन्म होता है, चाहे वह भावनाएँ आनन्द की हों या दुःख की, ऐसी सामूहिक भावनाएँ रखने वाले लोगों से राष्ट्र का निर्माण होता है। शिवाजी महाराज की जय हुई तो हमें खुशी होती है। क्यों? प्रत्यक्षतः हमें शिवाजी ने क्या दिया? राणा प्रताप की पराजय हुई, उन्हें दुःख उठाने पड़े - हमें इसका दुःख होता है। क्यों? हमें तो जंगलों में भटकना नहीं पड़ा! गुरुगोबिन्द सिंह के पुत्रों को दीवारों में जीवित चुनवाया गया। यह घटना सुनकर आँखें करुणा से क्यों भर जाती हैं? झाँसी की रानी पराजित होती है, तो हमें दुःख का अनुभव होता है। चाफेकर बन्धुओं द्वारा अत्याचारी रैण्ड का वध करने पर हमें खुशी होती है जबकि हमारा इनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। ये घटनाएँ हमारे जीवनकाल में घटी भी नहीं, फिर भी इतिहास की इन घटनाओं को पढ़कर, सुनकर जिनके मानस में समान भावनाएँ निर्मित होती हैं, ऐसे लोगों का राष्ट्र बनता है। जिनके इतिहास, घटनाएँ, महापुरुष, सन्त, विचारक समान हों, उनका राष्ट्र बनता है।

तीसरी शर्त सबसे महत्त्व की है। सशक्त राष्ट्र की अवधारणा में अच्छा और बुरा तय करने के आधार या मापदण्ड समान होते हैं। इन्हीं मापदण्डों को संस्कृति कहते हैं। रावण बुरा, राम अच्छे। कंस बुरा, कृष्ण अच्छे। कौरव बुरे, पाण्डव

अच्छे। परस्त्री का हरण बुरा, पिता को कारागार में डालना बुरा, अपनी भाभी को विवस्त्र करना, अधर्म। माता के कहने पर राज्य को त्यागकर वनवास स्वीकार करने वाले राम अच्छे, दुष्टों के संहारक कृष्ण हमारे आदर्श। सत्य की खोज करने वाले गौतम बुद्ध हमारे लिए वन्दनीय, शत्रु की स्त्री का माँ के समान सम्मान करने वाले शिवाजी हमारे आदर्श। ये आदर्श क्यों? क्योंकि इन्होंने अपनी संस्कृति को प्रत्यक्ष आचरण में प्रकट किया। जिनकी संस्कृति एक रहती है, जो जाति-पाँति का, पन्थ-सम्प्रदाय का विचार न करते हुए अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा मानते और कहते हैं, उनका राष्ट्र होता है।

जो भारत को अपनी मातृभूमि मानता है, भारत की संस्कृति को अपनी संस्कृति मानता है - वह है हिन्दू । वह मूर्ति पूजा करे या न करे, वह राम-कृष्ण को अवतार माने या न माने, वह कोई भी भाषा बोले- वह हिन्दू हो सकता है। इसलिए जैन, बौद्ध, सिक्ख, आर्य, लिंगायत आदि सब हिन्दू हैं। देश का भाग्य और भविष्य हिन्दुओं से ही जुड़ा है। हिन्दू नाम है राष्ट्र का। यह राष्ट्र का रूप है, हिन्दू राष्ट्र का प्राण है। इसलिए हिन्दुओं की दुर्बलता अर्थात् राष्ट्र की दुर्बलता। हिन्दू शक्ति अर्थात् राष्ट्र की शक्ति।

अखण्ड भारत

जिस प्रकार स्वाधीनता से पहले प्रत्येक राष्ट्रभक्त के लिए 'स्वाधीनता की भावना' प्रेरणा का मुख्य स्रोत हुआ करती थी उसी प्रकार स्वाधीनता के बाद अखण्ड भारत का स्वप्न प्रत्येक राष्ट्रभक्त के मन में होना चाहिए और इस स्वप्न को साकार करने के लिए उसे सदैव चिन्तन-मनन करते हुए प्रयत्नशील रहना चाहिए। आज कुछ लोगों को छोड़कर जन सामान्य ने भारत विभाजन को स्थापित सत्य मान लिया है। जो भू-भाग हमारे देश से अलग हुए हैं उनकी बहुत सी बातें और उनके विचार आज भारत से अलग होंगे लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से क्या फिर से हम उन्हें अपने विचारों के साथ नहीं जोड़ सकते?

अखण्ड भारत

जिस प्रकार सैकड़ों वर्ष पहले यहूदियों को उनके देश से निष्कासित कर दिया गया था, उनका नरसंहार किया गया था, उन्हें अन्य देशों में विस्थापित होना पड़ा था लेकिन उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्पशक्ति ने एकत्रित होकर पुनः अपने देश इजरायल के भू-भाग को प्राप्त किया। क्या यह भावना हमारे देश के लोगों में जाग्रत नहीं हो सकती?

१९७० से पहले पूर्वी पाकिस्तान, जो १९४७ में भारत से अलग हो गया था, के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था कि १९७१ में यह भाग बांग्लादेश के नाम से एक स्वतंत्र राष्ट्र बन जायेगा। इतिहास के दिशा बदलने से भूगोल भी बदल जाता है।

विभिन्न भाषाएँ, रीति-रिवाज, खानपान, परम्पराएँ, तीज-त्योहारों में विभिन्नता होने के बाद भी हमारा देश एक था। देश की एक साझा संस्कृति थी। देश अपने परम वैभव पर था। धन-धान्य से सम्पन्न, सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान का पाठ पढ़ाने वाला और सभी सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण था। यही वैभव जब कुछ आक्रमणकारी विधर्मियों को खटकने लगा तो उन्होंने 'फूट डालो राज करो' की नीति का पालन करते हुए कुछ लोगों को अपने साथ मिला लिया।

धीरे-धीरे यही लोग विधर्मियों के साथ मिलकर देश को खण्डित करने में उनका सहयोग करने लगे। यहाँ के लोगों

में अनेक प्रकार की कुरीतियों को पैदा किया गया जैसे छुआछूत, ऊँच-नीच की भावनाओं का निर्माण और समाज को ऊँच-नीच, जातिपाँति में बाँट दिया। धीरे-धीरे देश कमजोर होता चला गया। स्वार्थ और लालच की भावना ने देश की आत्मा को लहूलुहान कर दिया। इसका लाभ आक्रान्ताओं ने उठाया। उन्होंने देश की सम्पत्ति को लूटा, देश के टुकड़े किये। स्वाधीनता संघर्ष के कारण उन्हें देश छोड़कर जाना पड़ा लेकिन भारतमाता के अंगों को काटकर उसे खण्डित कर दिया। इसी कड़ी में भारत से अलग हुए क्षेत्रों के बारे में हम जानेंगे -

तिब्बत -

प्राचीनकाल में तिब्बत को त्रिविष्टिप कहते थे। विद्वान् मानते हैं कि तिब्बत ही आर्यों की प्राचीन भूमि है। पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार वैवस्वत मनु ने जल प्रलय के बाद इसी को अपना स्थान बनाया और यहीं से सम्पूर्ण भारत में उनकी सन्तति पहुँची। तिब्बत प्राचीनकाल से ही योगियों और सिद्ध पुरुषों का घर माना जाता रहा है। अपने पर्वतीय सौन्दर्य के लिए भी यह प्रसिद्ध है। तिब्बत मध्य एशिया का सबसे ऊँचा पठार है। यह बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र है। कैलास मानसरोवर तिब्बत में ही स्थित है। यहीं से ब्रह्मपुत्र नदी निकलती है। वर्तमान में तिब्बत चीन के अधिकार में है। सन् १९१४ में यह भारत से अलग कर दिया गया। बौद्ध धर्म के प्रमुख परम पावन दलाई लामा तिब्बत से निर्वासित होकर १७ मार्च १९५९ को ल्हासा छोड़कर अपने हजारों अनुयायियों के साथ भारत के हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला नामक स्थान पर रहने लगे।

एकात्मतास्तोत्रम्

हमारे राष्ट्र में श्रेष्ठ महापुरुषों की सुदीर्घ मालिका है जिनके सम्बन्ध में एकात्मतास्तोत्रम् में उल्लेख है। यहाँ कुछ समाजोद्धारक महापुरुषों के बारे में जानें –

सुभाषः प्रणवानन्दः क्रान्तिवीरो विनायकः।
ठक्करो भीमरावश्च फुले नारायणो गुरुः॥३०॥

भावार्थ- सुभाष चन्द्र बोस-नेताजी के नाम से प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, आजाद हिन्द फौज के संस्थापक, सिविल सेवा (आई०सी०एस०) की परीक्षा पास करके सरकारी सेवा को ठोकर मारकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। स्वामी प्रणवानन्द-पीड़ितों की सेवा तथा सहायता में जीवन खपाने वाले 'भारत सेवाश्रम संघ' के संस्थापक। प्रखर हिन्दुत्व के प्रतिपादक। स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर-प्रख्यात क्रान्तिकारी, हिन्दू राष्ट्र के प्रखर प्रतिपादक, ओजस्वी वक्ता और सशक्त लेखक। स्वतंत्रता और हिन्दुत्व पर अनेक पुस्तकें लिखीं। अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर बाप्पा- जिन्होंने अभियन्ता के बड़े पद का त्याग कर 'भारत सेवक समाज' के माध्यम से पूर्णकालिक सेवा का व्रत लिया। डॉ० भीमराव रामजी अम्बेडकर- महाराष्ट्र में जन्म और उच्च शिक्षा प्राप्त राष्ट्रवादी नेता, भारतीय संविधान के प्रारूप समिति के अध्यक्ष। महात्मा ज्योतिबा फुले- १९वीं शताब्दी के महाराष्ट्र में उपेक्षित बन्धुओं के उत्थान, नारी शिक्षा तथा सामाजिक एकता की स्थापना के लिए आन्दोलन चलाया। नारायण गुरु- केरल में 'अछूत' मानी जाने वाली जाति में जन्म लेकर संस्कृत और वेदान्त का अध्ययन कर वैराग्य लिया, भेदभाव पीड़ितों के लिए कार्य किया।

संघशक्तिप्रणेतारौ केशवो माधवस्तथा।
स्मरणीया सदैवैते नवचैतन्यदायकाः॥३१॥

भावार्थ- संघ शक्ति के प्रणेता डॉ० केशवराव बलिराम हेडगेवार-राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के कई संगठनों में सक्रिय रहे, कलकत्ता से डाक्टरी की पढ़ाई पूरी की। माधवराव सदाशिवराव

गोलवलकर उपाख्य श्रीगुरुजी-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राणिविज्ञान के प्राध्यापक रहे, बाद में कानून की शिक्षा ली। स्वामी अखण्डानन्द से संन्यास दीक्षा लेकर साधना में रम गए, बाद में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक बने। नवचेतना प्रदान करने वाली ये विभूतियाँ सदैव स्मरण रखने योग्य हैं।

अनुक्ता ये भक्ताः प्रभुचरणसंसक्तहृदयाः
अनिर्दिष्टा वीराः अधिसमरमुद्ध्वस्तरिपवः।
समाजोद्धर्तारः सुहितकर विज्ञाननिपुणाः
नमस्तेभ्यो भूयात् सकलसुजनेभ्यः प्रतिदिनम् ॥३२॥

भावार्थ - (एकात्मतास्तोत्र में) जिनका उल्लेख नहीं हुआ है, ऐसे भी भगवान् के चरणों में हृदय से समर्पित अनेक भक्त इस भूमि पर हुए हैं, ऐसे अनेक अज्ञात वीर यहाँ हुए हैं जिन्होंने समरभूमि में शत्रुओं का विनाश किया है तथा समाज के उद्धार करने वाले एवं लोकहितकारी, विज्ञान के कुशल आविष्कारक यहाँ हुए, उन सभी को प्रतिदिन हमारे प्रणाम समर्पित हों।

इदमेकात्मतास्तोत्रं श्रद्धया यः सदा पठेत् ।
सः राष्ट्रधर्मनिष्ठावान् अखण्डं भारतं स्मरेत्॥३३॥

भावार्थ - इस एकात्मतास्तोत्र का जो सदा श्रद्धासहित पाठ करेगा, वह राष्ट्रधर्म के प्रति निष्ठावान् होकर अखंड भारत को स्मरण रखेगा।

नागरिक कर्तव्य

कर्तव्यों के पालन से अधिकार सुरक्षित होते हैं।
एक-दूसरे के पूरक बन ये आरक्षित होते हैं।
भारतीय संस्कृति में जिनको धर्माचरण कहा जाता,
सहज सनातन जीवनमूल्यों में हम दीक्षित होते हैं।

कर्तव्य और अधिकार एक दूसरे के सम्बन्धित हैं। एक व्यक्ति का कर्तव्यपालन ही दूसरे के अधिकारों की रक्षा का मार्ग प्रशस्त करता है। जैसे, पिता का कर्तव्य है अपनी सन्तानों का पालन-पोषण-शिक्षण करना और संतानों का अधिकार है -पिता से पालन-पोषण-शिक्षण प्राप्त करना। पिता अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है तो सन्तानें स्वतः अपने अधिकारों को प्राप्त कर लेती हैं। ये परस्पर पूरक हैं। इसी प्रकार, कर्तव्य जैसे पिता के हैं वैसे ही कर्तव्य संतान के भी हैं। सन्तान के कर्तव्य, पिता के अधिकार हैं।

कर्तव्य और अधिकारों का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से है। इसे धर्म के रूप में ही प्रतिपादित किया गया है। कर्तव्यपालन ही प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है, कर्तव्यरहित अधिकार शोषण है, अत्याचार है। कर्तव्यों और अधिकारों का ठीक से निर्वहन होता रहे, इसका आदर्श व्यावहारिक स्वरूप भारतीय कुटुम्ब व्यवस्था है। परिवार 'मैं' की नहीं, 'हम' की भावना पर अधिष्ठित है। हमारे परम्परागत संस्कारों के कारण भारतीय संविधान की उद्देशिका का प्रथम शब्द ही 'हम' है। वह 'हम भारत के लोग' से आरंभ होती है और इस वाक्य 'आत्मार्पित करते हैं' पर पूर्ण होता है, अर्थात् संविधान में जो नियम-कानून-कार्य निर्धारित किए हैं, वे 'हम' स्वयं के लिए स्वीकार करते हैं। परस्पर सामंजस्य, एकता, भ्रातृत्वभाव और सबको अपने-अपने धर्म का पालन करने की ऐसी स्वतंत्रता, जो अन्य किसी की ऐसी स्वतंत्रता की बाधक न हो, नागरिकों से अपेक्षित कर्तव्यों की मूल भावना है। हिन्दू धर्मशास्त्रों ने शताब्दियों पूर्व से सत्य, करुणा,

शुचिता और तपस को धर्म के चार चरण माना है। यहाँ धर्म का अर्थ आदर्श जीवन पद्धति ही है। पूजा-पद्धति उसका बहुत छोटासा भाग है।

प्रथम चरण है सत्य। जो जैसा है उसे तथ्य के रूप में यथावत स्वीकारना, उसमें अपने स्वार्थ के लिए दृष्टि भेद उत्पन्न नहीं करना। भारत का बोध वाक्य ही 'सत्यमेव जयते' है। सत्य ही विजयी होता है यह हमारा अटल विश्वास है। इसे बनाए रखना हमारा कर्तव्य है।

दूसरा चरण है करुणा। क्रूरता कभी भी कर्तव्य नहीं हो सकती। जहाँ क्रूरता का प्रयोग करना आवश्यक हो तो वह अनेक अन्य लोगों के प्रति करुणा की रक्षा की भावना से ही होता है। अनेक निर्दोषों को मार डालने वाले आतंकी को क्रूरता से मारना पड़े तो यह मूलत: करुणा के भाव की रक्षा के लिए ही संपादित कार्य है। करुणा, हमारे पास जो है वह यदि किसी को आवश्यक होने पर भी प्राप्त नहीं है तो उसे देने का भाव है। यह औदार्य, सद्भाव एवं अपनत्व का सृजन करता है।

तीसरा चरण है शुचिता। किसी भी कार्य को करते समय शुचिता यानी पवित्रता की आवश्यकता है तभी वह पूर्ण फल देता है। शुचिता आंतरिक होती है दिखावटी नहीं। अंदर की पवित्रता शुभतामूलक होती है, अनाचार को रोकती है।

चतुर्थ चरण है तपस। सामान्य भाषा में समझें तो यह किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एकाग्रता और पूर्ण निष्ठा से किया जाने वाला कर्म है। बिना कुछ किए या बहुत कम करके बहुत फल की इच्छा तपस का विपरीत भाव है। इसलिए जितना आवश्यक है वह पाने के लिए उससे अधिक कार्य करो, श्रम करो और उसमें से अपना अभीष्ट फल पाओ, यह धर्म है।

संविधान के मूल कर्तव्यों में वर्णित है :

१. **संविधान, राष्ट्रीय ध्वज तथा राष्ट्रीय गान के प्रति आस्था व सम्मान व्यक्त करें।** संविधान हमने अपने लिए स्वयं बनाया है। राष्ट्रीय ध्वज, गीत आदि चिन्ह स्वयं स्वीकार किए हैं, इसलिए इनका सम्मान हम सबका कर्तव्य है। इसे न मानने का अधिकार किसी को नहीं।

२. **स्वतंत्रता संग्राम के पावन आदर्शों को संजोएँ व उनका अनुसरण करें।** हम स्वतंत्र हुए इसीलिए अपना संविधान, अपने नीति-नियम बना पाए। इसलिए जिन प्रयासों और व्यक्तियों के कारण स्वतंत्रता मिली, उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण व अनुकरण हम सबका कर्तव्य है।

३. **भारत की संप्रभुता, एकता व अखण्डता को समर्थन व प्रोत्साहन दें।** स्वतंत्रता मिली, पर वह बनी रहे। हम भारतीयों में एकता की भावना और देश की अखण्डता की रक्षा का कर्तव्य भाव बनाए रखना व ऐसा करने की प्रेरणा देना हमारा कर्तव्य है।

४. **देश की रक्षा करें व आवश्यकतानुसार राष्ट्र सेवा में जुटें।** 'देश हमें देता है सब कुछ हम भी तो कुछ देना सीखें' की भावना से देश की रक्षा और अन्य सब प्रकार से उसकी उन्नति के लिए आवश्यकता पड़ने पर निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर देश की सेवा करें।

५. **सभी भारतीयों में परस्पर भ्रातृत्वभाव प्रोत्साहित करें तथा महिलाओं की गरिमा के प्रतिकूल किसी भी प्रचलन का परित्याग करें।** वेदों में पृथ्वी को माँ और स्वयं को उसका पुत्र कहा है, उसी भाव से हम भारत को माता कहते हैं। इसलिए एक देश के हम सब नागरिक परस्पर बन्धुत्वभाव से बँधे हैं। ऐसे ही नारी हमारे भारत में सर्वोच्च महिमामयी है। 'यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' जैसी सूक्तियाँ यह भाव ही प्रतिपादित करती हैं। अत: नारी सम्मान की सब प्रकार रक्षा से करना हमारा कर्तव्य है।

६. **राष्ट्र की समन्वित प्रकृति की समृद्ध विरासत का अनुसरण करें**- हमारे राष्ट्र की आपसी समन्वयपूर्वक रहने की प्रकृति हमारे लिए साझा वरदान है। इसका अनुसरण हमारा कर्तव्य है।

७. **प्राकृतिक पर्यावरण को सुधारें, उसे संरक्षण दें तथा प्राणीमात्र के प्रति करुणा भाव रखें** - 'सर्वभूतहिते रता:' हमारी सांस्कृतिक विशेषता है इसलिए नदी, जल, पहाड़, भूमि, वन आदि को पर्यावरणीय दृष्टि से समृद्ध रखना और मानवेतर अन्य प्राणियों के प्रति करुणाभाव रखना हमारा कर्तव्य है। प्रकृति को माँ समान आदरणीय व रक्षणीय मानें।

८. **वैज्ञानिक मानसिकता, मानववाद तथा खोज का भाव विकसित करें।**

भारतीय संस्कृति वैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित आचरण को मान्य करती है। इनमें से कुछ प्रत्यक्ष व कुछ अप्रत्यक्ष विज्ञान पर आधारित हैं। तर्कहीन आचारों को कभी श्रेष्ठ नहीं मानती। अत: वे रूढ़ि या व्यवहार जो तर्कशुद्ध नहीं है, अन्धविश्वास फैलाते हैं, उन्हें महत्व न देकर मानवता की उत्कृष्टता के लिए अनुसंधान व वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा दें।

९. **जन संपत्ति की सुरक्षा करें और हिंसा का परित्याग करें।** सार्वजनिक सम्पत्ति राष्ट्र की धरोहर है, अत: उसे किसी प्रकार से हानि पहुँचाना परोक्ष-अपरोक्ष रूप से राष्ट्र को हानि पहुंचाना है। इसी प्रकार, हिंसा द्वारा सामाजिक सद्भाव, बन्धुत्व व सामाजिक व्यवस्थाओं को हानि पहुंचती है, इसका त्याग करें।

१०. **सभी वैयक्तिक और सामूहिक गतिविधियों में उत्कृष्टता का प्रयास करें।** हमारा व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में किया गया कोई भी कार्य इतना गुणवत्ता वाला हो कि उसे विश्व में सम्मान के साथ आँका जाए एवं राष्ट्र को भी उसका उत्तम प्रतिफल मिले।

संविधान में नागरिकों से जिन कर्तव्यों का पालन करने की अपेक्षा की गई है, वे मूलत: भारतीय संस्कृति के सनातन मूल्यों पर ही आधारित हैं। हमें इन कर्तव्यों का पूरी निष्ठा से पालन करना चाहिए।

अग्रिम पंक्ति का योद्धा- हरिगोपाल बल

बंगाल में मास्टर दा के नाम से विख्यात सूर्यसेन ने देखा कि कांग्रेस के ४३वें राष्ट्रीय अधिवेशन के अवसर पर सुभाष चन्द्र बसु के नेतृत्व में गणवेश पहने सात हजार स्वयंसेवक कैसे अनुशासित ढंग से पथ-संचलन (मार्चपास्ट) कर रहे थे। मास्टर दा अपने क्रान्तिकारी साथियों के साथ कुछ समय पहले क्रान्तिकारी गतिविधियाँ त्याग कांग्रेस में आ चुके थे पर सुभाष बाबू के इस सैन्य संचलन ने उन्हें ऐसा मोहा कि वे स्वयं वैसी एक सेना बनाने का निश्चय कर बैठे।

मास्टर दा द्वारा गठित इस इण्डियन रिपब्लिकन आर्मी के लिए नवयुवकों का चयन कठोर परीक्षा के बाद ही किया जाता था। उनका मानना था कि अंग्रेजों से लड़ने के लिए अंग्रेजों से ही हथियार लूटे जाएँ। चटगाँव के प्रसिद्ध शस्त्रागार की लूट इसी योजना का परिणाम थी। इस हेतु चुने गए पैंसठ हट्टे-कट्टे बलवान् एवं साहसी युवकों का नेतृत्वकर्ता था, हरिगोपाल बल।

२८ अप्रैल, १९३० को कार्य सम्पन्न करने की योजना थी। सभी को निजाम पलटन के प्रांगण बुलाया गया था। सैनिक वेश में लोकनाथ सावधानी से सबकी दृष्टि से बचते हुए वहाँ पहुँचा तो देखकर दंग रह गया कि उसके पीछे-पीछे उसका तेरह वर्ष का भाई हरिगोपाल भी आया है। वह जानता था कि यह बालक क्रान्तिकारियों के कामों में बहुत रुचि रखता है। वह कोई भी अवसर नहीं खोता, जहाँ उसकी भूमिका हो सके। बड़ा हठीला और निर्भय, वह सदैव कोई बड़ा

कारनामा कर अंग्रेजों को छकाना चाहता था। वह अभी तेरह वर्ष का ही था अत: छोटा मानकर लोकनाथ उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे।

लोकनाथ ने कहा- "यह कोई खेल का मैदान नहीं है। जाओ, तुरन्त लौट जाओ।" लोकनाथ बड़ा भाई ही नहीं, दल का नायक भी था। ''जानता हूँ। मैं भी खेलने नहीं लड़ने ही आया हूँ, आपके साथ, आप न ले जाना चाहें तो मेरा सिर काट दीजिए।'' हरि का अडिग उत्तर था। उसका हठ पूरा हुआ। शस्त्रागार की लूट सफल रही। आगामी योजना चटगाँव से अंग्रेजों का सफाया कर देने की थी।

चार दिन बाद ही अंग्रेजों के दो हजार सैनिक चटगाँव पहुँच गए। मास्टर दा का दल पास ही जलालाबाद की पहाड़ी पर घिर गया। छोटी- छोटी टुकड़ियों में दल के साहसी युवक शस्त्रागार एवं अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों पर तैयार थे।

हरिगोपाल बल

सूर्यसेन चुने हुए ५० सदस्यों के साथ पहाड़ी पर मोर्चा जमाए बैठे थे। २२ अप्रैल को युद्ध छिड़ गया। नेतृत्व लोकनाथ के कंधों पर था। सूर्यसेन पीछे की पंक्ति में रहकर साहस दिला रहे थे लेकिन चमत्कार तो हरिगोपाल ने दिखाया। भूमि पर कोहनियों के बल रेंगते हुए वह अपने दल से बहुत आगे शत्रु दल के एकदम पास जा कर मारने लगा। वह गिन रहा था- एक मारा, दूसरा मारा, तीसरा मारा, चौथा मारा, पांचवाँ भी और यह छठा। उसका साहस अतुलनीय था। घबराए अंग्रेजों ने उसे चारों ओर से ऐसे घेर कर मारा जैसे दुष्ट कौरवों ने अकेले अभिमन्यु का घेर कर वध किया था। महाभारत का वह प्रसंग जैसे नए परिवेश में पुन: प्रस्तुत था। अन्तत: शत्रु पर पहला और प्रभावी प्रहार कर उसने अपने औचित्य पर पक्की मुहर लगा दी थी। वह इस युद्ध का पहला बलिदानी बना।

लोकनाथ बहुत गर्वित भी था और अत्यधिक क्रोधित भी। उसकी उस अग्र पंक्ति की मारकाट से घबराकर अंग्रेजी सेना ने पीछे की पंक्ति जिसे सूर्यसेन सम्भाल रहे थे, पर धावा किया। मास्टर दा के साथ कई वीर बालक भी थे। तेरह वर्ष के निर्मल लाला ने अकेले पाँच अंग्रेजों को मृत्यु के मार्ग पर भेज दिया और शहीद हो गया। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु के कई किशोर त्रिपुर सेन, नरेश राय, मधुसूदन दत्त, प्रभास बल आदि इसी दल के अमर बलिदानी बने।

हिन्दुओं का भाग्य

गौतम, जाबालि, व्यास, वामदेव, वाल्मीकि,
कपिल, कणाद से महान ब्रह्मज्ञानी थे।
अर्जुन से धीर, अम्बरीष के समान भक्त,
हरिश्चन्द्र, कर्ण के समान यहाँ दानी थे।
नारद से संत, सती, सीता-अनुसूया-सम,
सत्य-सदाचार-पूर्ण एक-एक प्रानी थे।
ऐसा था हिन्दुओं के भाग्य का अतीत काल,
सुयश यहाँ के देवलोक की कहानी थे।।

३. हमारी भारतीय संस्कृति

> fdlh n'k dh lLÑfr dk y{; mld tu lenk; d vkpkj&fopkj d 'kf)dj.k dk gkrk gA mlel f'k"Vrkiod thou 0;rhr dju dh i)fr d vkn'k fufgr gkr gA 0;fDr dk 0;fDrÙo o mldh o'k ijEijk i;koj.k ,o lLÑfr lfufer gkr gA
>
> &Mk• fFk;kMkj U;dEc

जीवन-व्यवहार में संस्कृति का समावेश

संस्कृति की उपयोगिता और महत्ता तभी अक्षुण्ण रह सकती है जब जीवन के व्यवहार में उसके मूल्यों का सम्यक् समावेश हो। भारतीय संस्कृति की अवधारणा ही सर्वसमावेशी है। इसी आधार पर भारतीय संस्कृति आचरण और व्यवहार में उतारने योग्य है।

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही विश्वबन्धुत्व व प्राणिमात्र से प्रेम व आत्मीयता का आदर्श स्थापित करता रहा है। सर्वजन समभाव भारतीय दर्शन और भारतीय संस्कृति की विरासत है। भारतीय परम्परा में माना गया है कि एक ही आत्मा सभी प्राणियों में नाना रूपों में व्यक्त होती है। **'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः''।** भारतीय संस्कृति में सर्वत्र एकत्व देखा जाता है, सभी में आत्मभाव पाया जाता है, जीवन-व्यवहार में सभी प्राणियों में समदर्शन की भावना है। **''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः''** की उदात्त भावना भारतीय संस्कृति के जीवन दर्शन में देखने को मिलती है। विश्वमानवता और विश्वबन्धुता की भावना भारतीय संस्कृति में सुरक्षित है।

भारत धर्मप्रधान देश है। धर्म का कार्य है धारण करना, सबको जोड़ना। धर्म का कार्य है उपास्य से उपासक को और समाज से व्यक्ति को जोड़ना। बन्धुत्व की भावना के विकास में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सर्वधर्म समादर भाव के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में कहा, "मैं भूतकाल के सभी धर्मों को मानता हूँ और उनकी पूजा करता हूँ। मैं उनमें से प्रत्येक में वर्णित ईश्वर की पूजा करता हूँ। किन्तु मुझे उस धर्म का समर्थक होने का गर्व है, जिसने सम्पूर्ण विश्व को सहनशीलता और सार्वभौम स्वीकृति का भाव सिखाया है।"

महात्मा गाँधी भी सर्वधर्म समभाव के प्रबल समर्थक थे। वे मानते थे कि हमें अन्य धर्मों को भी अपने धर्म के समान आदर देना चाहिए।

भारतीय दर्शन विश्वकल्याण की भावना से प्रेरित है। इस विचार को मान लेने पर धर्मों का आपसी विरोध मिट सकता है। ऋग्वेद का एक सूक्त इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभा सकता है जिसमें प्रबोधन किया गया है, **'संगच्छध्वं संवदध्वं'** अर्थात् हम साथ साथ चलें, साथ-साथ बोलें।

संस्कारों का महत्त्व

संस्कार का अर्थ होता है - शुद्ध करना, साफ करना, चमकाना या भीतरी रूप को प्रकाशित करना। संस्कारों का विशेष आशय मानसिक और आध्यात्मिक परिशुद्धि से है। जिस व्यक्ति का संस्कार किया जाता है, उसके मन और बुद्धि पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जब हम किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में कहते हैं कि वह सुसंस्कृत है या उसके संस्कार अच्छे हैं

तब हमारा आशय उस व्यक्ति की बाहरी बातों या व्यवहार से उतना नहीं होता, जितना कि उसकी सद्भावना, सच्चरित्रता तथा मन और आत्मा की पवित्रता से होता है, जिसकी प्रेरणा से वह व्यक्ति सत्कार्य करता है और अपने श्रेष्ठ सद्गुणयुक्त संस्कारों का परिचय देता है।

संस्कार मानवता का मेरुदण्ड है। यह शिष्टता, सौजन्य तथा शील की आधारशिला है। सुसंस्कारी, चरित्रवान् तथा शीलवान् व्यक्ति जीवन के बाद भी अमर रहते हैं क्योंकि अनेक अनुयायी उनके आचरण को अपने आचरण में समाहित कर जीवित रखते हैं। संस्कारी व्यक्ति का प्रत्येक आचरण धर्ममय होता है और उसका प्रत्येक कर्म प्रकाश की ओर ले जाने वाला होता है। संस्कारसम्पन्न बनने के लिए हमें अपने दोषों को दूर करना आवश्यक है।

हमारी परम्पराओं के वैज्ञानिक आधार

प्रश्न- कर्णछेदन की परम्परा क्यों है?

उत्तर- भारतीय परम्परा में यह मान्यता है कि कान छिदवाने से कानों में किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती है, साथ ही बौद्धिक स्तर भी बढ़ता है।

मंदिर की घण्टी

प्रश्न- विवाहित महिलायें माँग में सिन्दूर क्यों लगाती है?

उत्तर- भारत में महिलायें विवाह के उपरान्त माथे के बीच में सिन्दूर लगाती हैं जो उनके शृंगार का एक आवश्यक भाग होता है। यह विवाह की एक निशानी होती है। सिन्दूर, हल्दी, चूना और पारा धातु के मिश्रण से बनता है इसलिए इसको लगाने से शरीर का ब्लड-प्रेशर ठीक रहता है। सिन्दूर में पारा मिला होने के कारण यह शरीर को दबाव और तनाव से मुक्त रखने में सहायक होता है।

प्रश्न- मन्दिरों में घण्टी/घण्टा क्यों बजाते हैं?

उत्तर- अधिकांश मन्दिरों के द्वार पर घण्टी / घण्टा टँगा रहता है जिसे लोग मन्दिर में प्रवेश करते समय बजाते हैं। घण्टा बजाने का वैज्ञानिक महत्व यह है कि जब भी इसे बजाया जाता है तो इसकी गूँज हमारे शरीर के संवेदी केन्द्रों को सक्रिय कर देती है जिससे हमारे मस्तिष्क में आने वाले नकारात्मक विचार समाप्त हो जाते हैं।

प्रश्न- भूमि पर आसन बिछाकर बैठकर ही भोजन क्यों करना चाहिए?

उत्तर- भोजन करने की सबसे अच्छी विधि बैठकर भोजन करना होता है। इसके पीछे वैज्ञानिक कारण यह है कि जब बैठकर भोजन किया जाता है तो शरीर शान्त रहता है और भोजन पचाने की क्षमता बढ़ती है। इस प्रकार बैठने से मस्तिष्क की उन धमनियों को सकारात्मक सन्देश पहुँचता है जो पाचनतन्त्र से सीधी जुड़ी होती हैं।

४. हमारी परिवार व्यवस्था

,d cMk ifjokj gekjk] ij[k lcd fgUn gA
fojkV lkxj lekt viuk]ge lcbld fcUn gAA

भारतीय परिवार व्यवस्था –

वर्तमान तकनीक के युग में कम्प्यूटर और एंड्रॉयड फोन के उपयोग के प्रति सावधानियाँ, हमारी दिनचर्या, धनोपार्जन क्यों और कैसे, सेवा और सेवा करते समय की सामान्य जानकारियाँ आदि बातें परिवार के सभी सदस्यों के समक्ष स्पष्ट होनी चाहिए अन्यथा जीवन की दिशा बदल जाती है।

प्रश्न १ : क्या स्वस्थ व्यक्ति के लिए निद्रा के बारे में कोई नियम हैं?

उत्तर – चिकित्साशास्त्र के अनुसार मनुष्य सामान्यत: आठ घण्टे नींद लेता है। वृद्ध, बच्चे और बीमारों के लिए न्यूनतम आठ घण्टे की नींद आवश्यक होती है। स्वप्नरहित नींद अधिक स्वास्थ्यकारी होती है। नियमित रूप से रात्रि में भोजन जल्दी करके स्वाध्याय के बाद सोना चाहिए। प्रात: ४:०० – ५:०० बजे के मध्य ब्रह्ममुहूर्त में उठकर नित्य क्रियाएँ–व्यायाम आदि पूर्ण करते हुए दैनिक कार्यों में लग जाना चाहिए।

प्रश्न २ : अपव्ययता कैसे नियंत्रित करनी चाहिए?

उत्तर – लोग हमारी प्रशंसा करें, इस दृष्टि से प्रदर्शन के लिए व्यय करना सर्वथा अनुचित है। अन्धानुकरण आज के समाज की संक्रामक व्याधि है। केवल आवश्यकताओं के लिए व्यय करना चाहिए, प्रदर्शन के लिए खर्चा करना उचित नहीं है। आजकल वधू का लहंगा–चुन्नी एवं वर का वेश (सूट, शेरवानी आदि) जो केवल शादी के समय ही पहना जाता है, हजारों रुपए में आता है, परन्तु उसका उपयोग बाद में क्या होता है? विवाह समारोह अब घरों या बारातघर / मंगल कार्यालय में न होकर होटल या फार्म हाउस आदि में आयोजित करने की होड़ लगी है। अपव्यय की व्याख्या है– 'अनावश्यक क्षणिक सुखदायी परन्तु भविष्य में संकट उत्पन्न करने वाला व्यय'। जहाँ अपनी सोच पैसों के घमण्ड या प्रतिस्पर्धा के जाल में फँस जाती है, अपव्यय हो जाता है।

प्रश्न ३ : अपनी संस्कृति में धनार्जन के बारे में नीति क्या है?

उत्तर– धनार्जन क्यों, कब, कैसे और कितना करना चाहिए, इसके विधि–निषेध की अपनी सीमा रेखाएँ सबको तय करके रखनी चाहिए। एक श्लोक है –

अकृत्वा परसंतापम् अगत्वा खल नम्रताम्।
अनुत्सृज्य सतां मार्ग यत्स्वल्पमपि तद्बहु:।।

'दूसरों को बिना दुख पहुँचाए, दुष्ट लोगों के सम्मुख बिना सिर झुकाए, बिना सज्जनता त्यागे, धन थोड़ा होने पर भी श्रेष्ठ होता है।' सन्तों का कहना है – श्रम से कमाओ, संयम से व्यय करो और प्रेम से दान करो।

प्रश्न ४ : परिवार में सभी के स्वस्थ रहने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर– आयुर्वेद के अनुसार शरीरस्थ धातु व मल आदि का सामान्य संतुलन बिगड़ जाना ही रोगों का कारण होता है–

समदोषसमाग्निश्च समधातुमलक्रिया:।
प्रसन्नात्मेन्द्रीयमना: स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

यह चरकसंहिता का श्लोक है। दोष अर्थात् – वात–पित्त–कफ नामक त्रिदोष; शरीर के विविध भागों में स्थित

उष्णता; अग्नि, रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा व वीर्य इन सप्त धातुओं की साम्य अवस्था; मल-मूत्र विसर्जन क्रियाओं में सहजता व मन-इन्द्रिय-आत्मा की प्रसन्न अवस्था को आरोग्य कहा गया है। रोगी का उपचार उसके रोग या शरीर की क्षमता के आधार पर करना होता है। व्यक्ति के गुण-लक्षणों के अनुसार औषधियाँ-उपचार आदि सही ढंग से चलाने पड़ते हैं। सबको निर्मलता का परिपालन करना चाहिए। अस्वस्थ हो जाने पर चिकित्सक के परामर्श के अनुसार औषधियाँ, पथ्य, विश्रान्ति, आहार आदि ढंग से समझ कर प्राथमिकता के अनुसार पालन सुनिश्चित करें।

भारतीय भाषाएँ

ब्रह्मनाद ओंकार बीज है, जननी वीणापाणी है।
भारतीय भाषा ललनाएँ, शुचि सुन्दर कल्याणी है॥

ज्ञान की अभिव्यक्ति का सहज, स्वाभाविक और सबल माध्यम स्वभाषा होता है। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के पश्चात् भी हमारे देश के कर्णधारों तथा शिक्षाविदों ने मातृभाषा में शिक्षा की उपेक्षा की। महात्मा गाँधी ने कहा है, **बालक की देह के विकास के लिए माँ का दूध जैसे स्वाभाविक है, उसी प्रकार उसके मस्तिष्क के विकास के लिए मातृभाषा। मातृभाषा से अलग भाषा पढ़ाना मातृभूमि के प्रति किया गया अपराध है।**

आचार्य विनोबा भावे के विचार थे - **"शिक्षा को यदि सार्वत्रिक एवं सार्वजनिक बनाना हो तो वह मातृभाषा में ही देनी चाहिए।"**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२० में भारतीय भाषाओं को महत्त्व देते हुए वर्णन किया है –

१) भारतीय भाषाओं एवं बहुभाषिकता पर जोर देते हुए त्रिभाषा सूत्र का पालन किया जाएगा।

२) छठी कक्षा से शुरू कर कम से कम दो वर्षों के लिए संस्कृत तथा शास्त्रीय भाषाओं का अध्ययन कराया जाएगा।

३) उच्च शिक्षा में संस्कृत पर बल दिया जाएगा।

४) व्यापार, रोजगार और देशव्यापी उपयोगिता की दृष्टि से हिन्दी को देश की सम्पर्क भाषा के रूप में त्रिभाषा सूत्र में उचित स्थान दिया गया है।

५) संस्कृत के महत्त्व को समझते हुए उसे अन्य समकालीन और प्रासंगिक विषयों जैसे कि गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, भाषा विज्ञान से जोड़ा जाएगा।

स्वदेशी अपनायें - देश बचायें

देश उठेगा अपने पैरों, निज गौरव के भान से।
स्नेहभरा विश्वास जगाकर, जीयें सुख सम्मान से॥

स्वदेशी के विचार से राष्ट्रीयता परिपुष्ट होती है। स्वतंत्रता संग्राम में स्वदेशी के विचार को हथियार के रूप में अपनाया गया। आज जब बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत की अर्थव्यवस्था को कमजोर करने में लगी हैं तो स्वदेशी विचार की उपादेयता बढ़ जाती है।

कोई भी ऐसी कम्पनी जो एक साथ दुनिया के एक से अधिक देशों में व्यापार-व्यवसाय करती है, बहुराष्ट्रीय कम्पनी कही जाती है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, चीन आदि देशों की अनेक कम्पनियाँ भारत जैसे देशों में सस्ती दरों पर कच्चा माल खरीदती हैं और यहीं की श्रम-शक्ति का न्यूनतम मूल्य पर उपयोग कर माल तैयार करती हैं,

उसे ऊँचे लाभ पर हमें ही बेच देती हैं और लाभांश भारत के बाहर ले जाती हैं। इस तरह ये कम्पनियाँ और उनके देश और अधिक धनवान बनते हैं और विकासशील देशों में भारत जैसे देशों में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास विश्व की सभी सरकारों की कुल तरल परिसम्पत्ति (नगदी) से तीन गुना नगदी है। अमरीका की 'सीमर्स टोब्यूक एण्ड कम्पनी' केवल विज्ञापन पर हर साल २३०० करोड़ रुपया खर्च करती है।

कोई विदेशी कम्पनी जब एक डालर भारत में लगाती है तो उसके बदले २.२ डालर देश से बाहर ले जाती है। ये कम्पनियाँ कुल पूँजी का ५ से ८ प्रतिशत बाहर से लाती हैं। शेष पूँजी शेयरों के द्वारा भारत से इकट्ठा करती हैं। जितनी पूँजी भारत में लगाई जाती है, वह तीन से पाँच वर्ष में ही भारत से कमा ली जाती है।

एक ही समाधान - स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग

स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से देश का पैसा देश में ही रहेगा, हमारे उद्योग-व्यापार बढ़ेंगे, रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, गरीबी मिटेगी, हम स्वावलम्बी बनेंगे और हमारी स्वतन्त्रता बनी रहेगी। इसलिये, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बनी वस्तुओं का बहिष्कार करें और केवल स्वदेशी उत्पादों का ही उपयोग करें। बड़े उद्योगों के बदले छोटे उद्योगों को बढ़ावा दें ताकि ज्यादा हाथों को काम मिले और देश आत्मनिर्भर बने।

गीत - गौरवशाली परम्परा

आदिकाल से अखिल विश्व को, देती जीवन यही धरा।
गौरवशाली परम्परा ..... ।।ध्रु.।।

जीवन की आदर्श चिन्तना, परिपूरण परिपक्व विचार
कालातीत है दर्शन अपना, आत्मवत् सब सृष्टि निहार
सारा जग परिवार हमारा, पूज्या माता वसुन्धरा।
गौरवशाली परम्परा ..... ।।१।।

परमेश्वर के रूप अनेकों, अपने अपने मार्ग विशेष
श्रद्धा भक्ति अक्षय निष्ठा, नहीं किसी से राग न द्वेष
विविध पंथ वैशिष्ट्य सुवासित, एक सत्य का भाव भरा
गौरवशाली परम्परा ..... ।।२।।

शील सत्य संयम मर्यादा, शुद्ध विशुद्ध रहा व्यवहार
करुणा प्रेम सहज सा छलका, सेवा तप ही जीवन सार
अमर तत्त्व के अमर पुजारी, विष पीकर भी नहीं मरा
गौरवशाली परम्परा ..... ।।३।।

सघन ध्यान एकाग्र ज्योति से, किये गहनतम अनुसंधान
कला शिल्प संगीत रसायन, गणित अणु आयुर्विज्ञान
सभी विधाएँ आलोकित कर, महिमामय भूलोक वरा
गौरवशाली परम्परा ..... ।।४।।

परिपूर्ण परिपक्व विचार

अपने-अपने मार्ग विशेष

विष पीकर भी नहीं मरी

शौर्य पराक्रम अतुल तेज से, वीरोचित आया भूडोल
आयुध सज्जित अगणित योद्धा, नेत्र तीसरा फिर से खोल
शीश कटा पर देह लड़ी थी, स्वयं काल भी नहीं डरा
गौरवशाली परम्परा ..... ।।५।।

आत्म चेतना नव-आभा ले, फिर से हिन्दू राष्ट्र खड़ा
विराट शक्ति प्रगटे गरजे, दुष्ट दलन हो कदम कड़ा
तुमुल घोष जयनाद करेगा, अपनाओ स्वधर्म जरा
गौरवशाली परम्परा ..... ।।६।।

संतवाणी

संत कबीर जीवन भर समाज के उत्थान के लिए निर्भीकता से दमनकर्ता के सामने उसके कमजोर पक्ष रखते थे और समाज में व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों, पाखंडों आदि को दूर करने के लिए जनजागरण करते थे। वे बुराई को अच्छाई से दूर करने के पक्षधर थे। तभी तो वे कहते थे-

जो तोको काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल के फूल हैं, बाको हैं त्रिशूल।।

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

कबीर भोगवाद के प्रबल विरोधी थे। खाना, सोना, मौज-मस्ती में जीवन गँवा देने के स्थान पर वे कर्म के पक्षधर थे। वे अनावश्यक संग्रह के भी कटु आलोचक थे और केवल उतने ही उपभोग के पक्षधर थे जितने से जीवन-यापन हो सके। लेकिन लोग कहाँ सुनते थे। इसीलिए वे कह उठे थे-

सुखिया सब संसार, खाए और सोए।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोए।।

कबीर के समय के समाज में दुर्बलों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । वे गुलामों जैसा जीवन जीने को विवश थे। इसी सामाजिक विषमता से कबीर के हृदय में ये उद्‌गार उपजे। जिनमें उन्होंने कुलीनों को सावधान करते हुए कहा-

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की साँस सों, लौह भस्म होइ जाय।।

धनी वर्ग को चेतावनी देने के बाद वे नैतिक रूप से झकझोरते भी हैं -

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।।

कबीर की शिक्षा, उपदेश और सन्देश आज भी प्रासंगिक व प्रेरक हैं।

५. हमारी ज्ञान परम्परा

Hkkjr gekjh lLÑfr] tkfr d fodkl vkj ;jki dh lHkh Hkk"kkvk dh tuuh gA geu vjck d }kjk tkxf.kr vkj n'ku dk Kku çkIr fd;k] og Hkkjr l gh ogk igpk FkkA geu c) l lPp èke dk Kku çkIr fd;k vkj mlh ck) èke dh f'k{kk, b lkb èke e Hkh gA geu Hkkjr d xke jkT;k l Lojkt vkj ykdr=dk Kku çkIr fd;kA Hkkjr d gekjh lLÑfr ij vud midkj gA

& l;Dr jkT; vefjdk d çfl) nk'kfud] foy M;jk

एकात्म मानव दर्शन

एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता पण्डित दीनदयाल जी स्वभाव से स्वाध्यायी थे। 'राष्ट्र' मूल विचार पर अनेक पुस्तकें उन्होंने पढ़ी थीं। ऐसी ही एक पुस्तक सन् १९२३ में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक की प्रस्तावना लोकमान्य तिलक जी ने लिखना स्वीकारा था, परन्तु उनका देहावसान हो जाने के कारण लिखना रह गया। इस पुस्तक का नाम है, 'दैशिक शास्त्र'। इसके लेखक बद्रीसाह टुलघरिया थे। दीनदयाल जी के विचारों को दिशा देने वाली इस पुस्तक को एकात्म मानव दर्शन का स्रोतग्रन्थ माना जाता है।

व्यष्टि से परमेष्ठी का विचार

दीनदयालजी जी ने एकात्म मानव दर्शन में व्यक्ति का विचार मानव जीवन और सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्म सम्बन्धों के आधार पर किया है। यह दर्शन एकांगी विचार न कर, व्यक्ति के जीवन का उसके सभी अंगों को ध्यान में रखते हुए समग्रता में विचार करता है। राष्ट्र के चार आयाम हैं, व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी। **व्यष्टि अर्थात् व्यक्ति।** पश्चिमी विचारकों ने व्यक्ति को केवल भौतिक प्राणी माना है और उसकी मूलभूत आवश्यकताओं-रोटी, कपड़ा और मकान का ही विचार किया है, जो अधूरा विचार है। दीनदयाल जी मानव को शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का समुच्चय मानते हैं। हमारे शास्त्र भी कहते हैं, "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" दुर्बल व्यक्ति आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। इसलिए व्यक्ति का समग्र विकास आवश्यक है।

समष्टि अर्थात् समाज। पश्चिम में समाज को 'एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक समझौता' के आधार पर बना व्यक्तियों का समूह मानते हैं। भारत के मूल विचार में समाज भी एक जीवमान इकाई है। व्यक्ति की भाँति समाज भी पैदा होता है। जैसे व्यक्ति में शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा होते हैं, वैसे ही समाज में भी देश, जन, संस्कृति व चिति होते हैं। इसलिए व्यष्टि व समष्टि में संघर्ष नहीं है, अभिन्नता व पूरकता है। यही विचार सृष्टि व परमेष्ठी के बारे में है। **सृष्टि अर्थात् प्रकृति।** व्यक्ति बिना सृष्टि के जीवित नहीं रह सकता। व्यक्ति का जीवन हवा, पानी व आहार के बिना चल नहीं सकता, जो उसे सृष्टि से मिलते हैं। इसलिए सृष्टि का संरक्षण प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है। **परमेष्ठी का अर्थ है वह परमात्मा,** जिसने सृष्टि को और हम सबको बनाया है। उसे प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम उद्देश्य है। इन चारों में कोई संघर्ष नहीं है, अपितु परस्पर पूरकता है। यही मानव जीवन के व्यष्टि से परमेष्ठी तक के विकास का सिद्धान्त है।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा

गुरुकुल भारत में प्रचलित अनोखी शिक्षा व्यवस्था थी। गुरुकुल में गुरुगृह वास अनिवार्य था। सभी ज्ञानार्थी ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए पूर्ण समय प्रकृति की गोद में रह कर ज्ञानार्जन करते थे और सादा जीवन अपनाते थे। विद्यापीठ में उन्हें केवल अंकों-अक्षरों की शिक्षा ही नहीं, अपितु शस्त्र-शास्त्र, प्रकृति संरक्षण तथा व्यवहार की शिक्षा अर्थात् जीवन की समग्र शिक्षा दी जाती थी। विद्यापीठों में १४ विद्याएँ और ६४ कलाएँ सिखाई जाती थीं। इन विद्यापीठों में वैदिक, बौद्ध व जैन तीनों ही विचार दर्शन थे। सम्पूर्ण शिक्षा नि:शुल्क थी, समाज आवश्यकतानुसार उनको सहयोग करता था।

ईसा पूर्व १००० से ईसा पूर्व ५०० वर्ष तक के काशी, तक्षशिला, गुणशिला व कुण्डिनपुर विद्यापीठों की जानकारी हम इस अंक से पहले की पुस्तकों में पढ़ चुके हैं। अब हम ईसा पूर्व ४०० वर्ष से ईस्वी १२०० तक चल रहे विद्यापीठों की जानकारी लेंगे।

नालन्दा विश्वविद्यालय

यह विश्वविद्यालय वर्तमान में बिहार राज्य के राजगीर (मूल नाम राजगृह) के निकट स्थित था। चौथी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक यह विश्वविद्यालय भारत की ज्ञान परम्परा से भारत का नाम विश्व के अनेक विद्वानों, ज्ञानार्थियों और पर्यटकों को आकर्षित करता रहा। यहाँ वैदिक, बौद्ध तथा जैन दर्शन, तीनों के प्रमुख विचारों तथा विज्ञान-गणित-साहित्य आदि का अध्ययन-अध्यापन होता था।

कुलपति शीलभद्र ने समस्त संग्रहों का पूर्ण अध्ययन किया था। ह्वेन-त्साङ् के वर्णन के अनुसार उस समय इस योग्यता के अन्य कोई विद्वान् नहीं थे।

पाठ्यविषय - सन्निविष्ट, ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों के साथ-साथ सभी प्रमुख भौतिक विषयों की उच्चतम शिक्षा जैसे हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, तंत्रविद्या, योगशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष व विविध दर्शनों का अध्ययन यहाँ होता था।

शिक्षण पद्धति - यहाँ तीन पद्धतियाँ प्रचलित थीं। पहली - मौखिक पद्धति। इसमें पुस्तक से व्याख्या की जाती थी। तत्पश्चात छात्र अभ्यास कर शिक्षक को सुनाते थे। दूसरी - व्याख्यान पद्धति- आज की पद्धति के समान, बाद में प्रश्नोत्तर या जिज्ञासा समाधान। तीसरी - शास्त्रार्थ पद्धति-गम्भीर प्रश्नों को पूछने और उत्तर खोजने, परस्पर विचार-विमर्श करने, अपने-अपने मत को प्रस्तुत करने और एक-दूसरे के अध्ययन से अपने अनुभव को पुष्ट करने की पद्धति, जो आजकल प्रचलित सेमिनार का स्वरूप थी।

नि:शुल्क शिक्षा - भोजन, वस्त्र, औषधि आदि का प्रबन्ध विश्वविद्यालय द्वारा किया जाता था। विद्यार्थियों को अध्ययन के अतिरिक्त किसी भी बात की चिन्ता नहीं थी। शिक्षा पूर्णतया नि:शुल्क थी। विश्वविद्यालय संसाधनों में आत्मनिर्भर था तथा आवश्यकता पड़ने पर समाज सहयोग करता था।

प्रवेश परीक्षा - पर्याप्त कठोर होती थी, ताकि योग्य व्यक्ति ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर राष्ट्रोन्नति में सहयोगी बने। इतनी कड़ाई के बाद भी नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थी थे।

शिक्षक - ह्वेन-त्साङ् के समय यहाँ १५१० आचार्य थे। योग्यतानुसार उनकी तीन श्रेणियाँ थीं -

क. उच्चतम श्रेणी –(१० आचार्य) सूत्र तथा शास्त्र ग्रन्थों के ५० संग्रहों की व्याख्या करने में सक्षम आचार्य थे।

ख. द्वितीय श्रेणी (५०० आचार्य)– ३० संग्रहों की व्याख्या करने वाले आचार्य थे।

ग. सामान्य श्रेणी (१००० आचार्य) – २० संग्रहों की व्याख्या करने वाले आचार्य थे।

प्रबन्ध – विश्वविद्यालय की व्यवस्था का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कुलपति पर था। वे सबको उचित परामर्श देते थे। यहाँ दो सभाएँ थीं – शैक्षणिक सभा जो आज की एकेडमिक कौंसिल की भाँति कार्य करती थी। शिक्षा से सम्बन्धित सभी विषय– जैसे प्रवेश, पाठ्यक्रम, अध्यापन इत्यादि। दूसरी सभा– सामान्य प्रशासन एवं आर्थिक विषय जैसे भवन निर्माण, मरम्मत, भोजन–वस्त्र व छात्रावास की व्यवस्थाएँ तथा सामान्य कार्य देखती थीं। विश्वविद्यालय व छात्रावास की व्यवस्था, स्वशासन व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था छात्र ही सम्भालते थे।

अर्थव्यवस्था – निकटवर्ती २०० गाँवों की भूमि से प्राप्त कृषि उपज, गौ, बाग–बगीचे आदि से १०००० (दस हजार) शिक्षार्थियों के भोजन–आवास की व्यवस्था होती थी। नालन्दा समाज आधारित विद्याकेन्द्र का श्रेष्ठ उदाहरण था।

पुस्तकालय – यहाँ का पुस्तकालय सुसज्जित था। तीन बड़े भवन थे। रत्न सागर, रत्नोदधि तथा रत्नरंजक। ये तीनों भवन नौ तलों के थे। ९ लाख पुस्तकें इनमें थीं। ह्वेन–त्साङ् ने यहाँ से संस्कृत की ४०० अप्राप्त पुस्तकें संगृहीत की थीं, जिनमें ५ लाख श्लोक थे।

७वीं शताब्दी का नालन्दा, आधुनिक विश्वविद्यालयों – ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और हारवर्ड की स्थापना से शताब्दियों पूर्व ही श्रेष्ठतर शैक्षिक स्तर और व्यवस्थाओं से युक्त था।

आक्रमणकारी बख्त्यार खिलजी ने नालन्दा विश्वविद्यालय में आग लगा दी थी। यह पुस्तकालय ६ माह तक जलता रहा। नालन्दा विश्वविद्यालय ने निरन्तर ८०० वर्षों तक ज्ञान परम्परा को बनाये रखा। शिक्षा के इतिहास में यह स्वर्णयुग कहलाता है।

मदुरै विद्यापीठ

मदुरै विद्यापीठ मदुरै नगर में स्थित था। इसकी स्थापना का समय ई. पूर्व ४०० वर्ष था। पुराणों में इसका नाम कदम्ब क्षेत्र है। एक दन्तकथा के अनुसार, इस नगरी पर मधु की वर्षा हुई थी इसलिए इसका नाम मदुरै पड़ा। यह तिरुवल्लुवर आदि कवियों की नगरी है। नृत्य, संगीत व चित्रकला की शिक्षा यहाँ दी जाती थी। सूती वस्त्र उद्योग के लिए प्रख्यात इस नगरी में सूत कताई–बुनाई की विशेष शिक्षा दी जाती थी।

काञ्ची विद्यापीठ

काञ्ची अर्थात् आज का काँचीपुरम् या काँजीवरम् जो चिंगलपेट्टु – आर्कोणम् मार्ग पर स्थित है। तमिलकाव्य 'मणिमेखलै' में इसका उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि ने भी इसका उल्लेख किया है। काञ्ची में स्थापत्यकला एवं शिल्पकला की शिक्षा दी जाती थी। दक्षिण भारत का सबसे बड़ा विद्याकेन्द्र था। यहीं से सुदूर पूर्व के भारतीय उपनिवेशों में संस्कृत का प्रसार हुआ। (पणिक्कर–ए सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री पृ॰ ११३)। दूसरी से छठी शताब्दी तक प्रत्येक विद्याशाखा में काञ्ची के विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर ख्याति प्राप्त की। प्रख्यात बौद्ध आचार्य नागार्जुन – २४ ग्रन्थों के लेखक काञ्ची से ही नालन्दा गये थे। महान् विद्वान– वात्स्यायन, बुद्धघोष, धर्मपाल, दिङ्नाग काञ्ची से ही निकले थे।

काञ्ची का वैशिष्ट्य स्थापत्यकला का अध्ययन था। बौद्ध, जैन, हिन्दू और द्रविड़, इन चारों प्रकार की शिल्पकला शैलियों का अध्ययन होता था। काञ्ची की शिल्पकला भारत की सबसे प्राचीन शिल्पकला है।

काञ्ची विद्यापीठ ने अपने प्रारम्भिक काल में घटिकाओं में से वैदिक पद्धति का शिक्षण और उत्तरार्द्ध में बौद्ध विद्याओं के अध्ययन में ख्याति प्राप्त की थी।

पुनर्जन्म व पूर्वजन्म

सृष्टि में जीवनक्रम के सम्बन्ध में दो मान्यताएँ प्रचलित हैं। एक मान्यता है कि यह जीवन ही प्रथम और अन्तिम जीवन है, मृत्यु के बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है। किसी ने परलोक नहीं देखा है इसलिए पुनर्जन्म और परलोक कोरी कल्पनाएँ है। इस मत का प्रतिपादन करने वालों में प्रमुख नाम चार्वाक का है। वे प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते थे, जो दृष्टिगोचर नहीं है उसे वे नहीं मानते थे। उनका एक प्रसिद्ध श्लोक है –

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः॥

चार्वाक कहते हैं कि जब तक जीओ सुखपूर्वक जीओ, ऋण लेकर भी घी पीओ क्योंकि यह शरीर तो मृत्यु के पश्चात् जलकर नष्ट हो जाता है। पुनः आना-जाना अर्थात् बार-बार जन्म लेना और मरना कहाँ सम्भव है? विश्वभर में भौतिकवादी, अर्थात् जो ईश्वर को नहीं मानते, वे पुनर्जन्म को भी नहीं मानते। जो ईश्वर में विश्वास रखते हैं और कर्मफल को मानते हैं, उनकी पक्की मान्यता है कि पुनर्जन्म होता है। मृत्यु के पश्चात् केवल स्थूल शरीर नष्ट होता है, आत्मा नष्ट नहीं होता, वह तो अजर-अमर है। आत्मा व कर्म जो सूक्ष्म शरीर कहलाता है, वह मृत्यु के पश्चात् नये शरीर को धारण करता है, इसे ही पुनर्जन्म कहते हैं। जब तक आत्मा मुक्त नहीं होता तब तक जन्म और मृत्यु का क्रम चलता रहता है।

पुनर्जन्म सिद्ध करता है कि पूर्वजन्म था, तभी तो पुनर्जन्म हुआ है। कुछ बच्चों को बचपन में अपने पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहती है। वे अपने पूर्वजन्म के घर को, अपने माता-पिता को और अन्य परिजनों को पहचान लेते हैं। ऐसे उदाहरण भी सिद्ध करते हैं कि पूर्वजन्म व पुनर्जन्म होते हैं। कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जिनका कार्य-कारण सम्बन्ध पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को माने बिना समझ में नहीं आ सकता। जैसे- नन्हे बच्चे निद्रा में पूर्वजन्म की स्मृति से कभी हँसते हैं, कभी डरते हैं। नवजात शिशु द्वारा अपनी माता के स्तनपान करने वाली उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उसके पूर्वजन्म के अनुभव को सिद्ध करती है। इनके अतिरिक्त किसी-किसी पर आनेवाली आकस्मिक विपदाएँ जैसे, बाल वैधव्य, असाध्य रोग, जलप्रलय या अग्निप्रलय, अपघातादि का कोई कारण इस जन्म में नहीं मिलता। इन सबका कारण पूर्वजन्मकृत कर्म न मानें तो ईश्वर को घोर अन्यायी, स्वेच्छाचारी व निष्ठुर मानना पड़ेगा। ऐसी मृत्यु की पहेली पुनर्जन्मवाद से ही समझी जा सकती है।

कठोपनिषद् के अनुसार नचिकेता ने यमराज से प्रश्न किया था, "मरने पर आत्मा रहता है या नहीं?" यमराज ने यही उत्तर दिया कि अवश्य रहता है। आत्मा नित्य है, शरीर का नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। गीता में भी कहा गया है –

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (अध्याय ४, श्लोक २०)

यह आत्मा न तो किसी काल में जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी वह नहीं मारा जाता।

वाल्मीकि रामायण में युद्ध के बाद दशरथ जी का समरभूमि में आना तथा श्रीराम और लक्ष्मण से वार्तालाप करना आत्मा की अमरता तथा परलोक का प्रमाण है। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "हे अर्जुन! मैं पहले कभी नहीं था, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार तुम और राजा लोग पहले नहीं थे, यह बात भी नहीं है। और यह भी नहीं है कि हम सब आगे न होंगे।" यह पुनर्जन्म परम्परा ऐसे ही त्रिकालबाधित चलने वाली है। जीवात्मा के अमरत्व पर जिनका विश्वास है, उन्हें जन्म-मृत्यु की परम्परा को अनादि मानना ही पड़ेगा, क्योंकि प्रत्येक पुनर्जन्म पूर्वजन्म को सिद्ध करता है।

श्रीरामचरितमानस प्रसंग

लंकाकाण्ड में श्रीराम का विजय रथ

जीवन में आगे बढ़ते रहने वालों को अभावों-आपत्तियों का सामना भी करना ही पड़ता है। जिन्हें जीवन में कोई बड़ा लक्ष्य प्राप्त करना है वे कभी साधनों की कमी और समस्याओं का बहाना न बनाकर अपने नैतिक बल एवं संकल्पशक्ति से विजय प्राप्त कर लेते हैं। श्रीरामचरितमानस के इस प्रसंग में 'भौतिक से श्रेष्ठ नैतिक' का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है –

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।।

रावण को रथ पर और श्रीराम को बिना रथ देखकर विभीषण अधीर हो उठे। अत्यन्त प्रेम के कारण, इस प्रकार साधनविहीन रह कर ये युद्ध कैसे जीतेंगे, ऐसा सन्देह करते हुए वे श्रीराम के चरणों की वन्दना करते हुए प्रेमपूर्वक कहने लगे –

नाथ न रथ नहि तन पदत्राना। केहि बिधि जितब वीर बलवाना।।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।

हे नाथ! आपके पास न रथ है, न कवच और न जूते ही हैं। आप इस बलशाली वीर (रावण) को कैसे जीत सकेंगे? श्रीराम बोले-सुनो मित्र! जिससे विजय होती है वह रथ दूसरा ही है।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।

शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं, सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा-पताका हैं। बल, विवेक, दम (इन्द्रियों को वश में रखना) व परोपकार उसके चार अश्व हैं जोकि क्षमा, दया और समता रूपी लगाम से जुड़े हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।

ईश्वर भजन उस रथ का चतुर सारथी (रथचालक), वैराग्य ढाल और संतोष कृपाण है, दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है और श्रेष्ठ विज्ञान ही मजबूत धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।

पाप रहित निर्मल और स्थिर मन तरकश के समान है जिसमें शम (मन पर नियंत्रण), यम (अहिंसा आदि), नियम (शौच आदि) बहुत से बाण हैं। विप्र और गुरुजनों का पूजन ही अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का उपाय कोई दूसरा नहीं है।

सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।।

हे मित्र! ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास हो, वह किस शत्रु को नहीं जीत सकता?

दो० – महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।। ८० (क)।।

हे धीर बुद्धि सखा! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु चक्र) रूपी महादुर्जेय शत्रु को भी जीत सकता है, रावण की तो फिर बात ही क्या है?

सुनि प्रभु बचन विभीषन, हरषि गहे पद कंज ।
एहि मिस मोहि उपदेसहू, राम कृपा सुख पुंज ॥ - लंकाकाण्ड ८० (ख)

प्रभु के वचन सुनकर प्रसन्न होकर विभीषण ने उनके चरण पकड़ते हुए कहा - हे कृपा और सुख के समूह श्रीराम जी! आपने इस बहाने मुझे महान उपदेश दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता का चमत्कार है कि उसके द्वारा जीवन के विवेक का सत्य और सुन्दर अनावरण हुआ, जिसने 'दर्शन' को धर्म के रूप में पुष्पित और पल्लवित किया है। – हरमन हेस (जर्मनी)

कष्ट सहते हुए भी एकाग्रतापूर्वक, अचल संकल्प के साथ किसी लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्न 'तप' कहलाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में तप के विभिन्न प्रकार बताए गए हैं। विद्यार्थियों को अपने अध्ययन काल में मानसिक श्रम अधिक करना पड़ता है उनका यह 'श्रम' 'तप' बनकर फलदायी हो, इस उद्देश्य से यहाँ प्रस्तुत 'मानसिक तप' को समझना व आचरण करना चाहिए –

मानसिक तप

मन को उन्नत बनाने के लिए मानसिक तप बतलाया गया है -

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते॥१७/१६॥

मन की प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवत्चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तःकरण के भावों की भलीभाँति पवित्रता - इसे मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।

व्यवहार कुशलता

'स्व' का सामर्थ्य एवं कलियुग का कुचक्र

मनुष्य की व्यावहारिकता का स्तर अच्छे व्यक्तित्व गठन के लिए मापदण्ड है ऐसा व्यक्तित्व जो स्वयं, परिवार, समाज, राष्ट्र, और विश्व के काम आ सके। श्री गीता जी हमारे सर्वांगीण विकास पर दृष्टि रखती हैं, जिसमें "स्व" के विकास पर विशेष आग्रह है। सामान्यतः हम स्वयं को बिना जाने-पहचाने, बिना जीते ही सम्पूर्ण बाहरी जगत् पर अधिकार चाहते हैं, जीतना चाहते हैं। प्रथम आवश्यकता स्वयं को जानने -पहचानने की है। स्वयं की क्षमता और ब्रह्माण्ड की संरचना के साथ सामंजस्य जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है।

वर्तमान युग कलियुग का प्रथम चरण है। अस्थिरता, अनिश्चितता, जटिलता, संदिग्धता अधिक देखने को मिल रही है, इसलिए दूरदृष्टि, समझदारी, स्पष्टता, चुस्ती को बढ़ाना होगा। हमारा पुरुषार्थ उपयुक्त दिशा में ही हो, उसके लिए व्यवहार सम्बन्धी कुछ श्लोकों का अवलोकन करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के इन सूत्रों की मन और मस्तिष्क में स्पष्टता दैनिक व्यावहारिकता में बहुत लाभदायक होती है -

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (१२/१३-१४)

जो पुरुष सब में द्वेष भाव से रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और बिना किसी प्रकार का अपना लाभ चाहे दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख-दुख की स्थिति में सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है; तथा जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है और मुझ में अर्पित दृढ़ बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ (१२/१५)

जिससे किसी भी जीव को उद्वेग प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता; तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है- वह भक्त मुझको प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः। (१२/१६)

जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है-वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ (१२/१७)

जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है - वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥ (१२/१८)

जो शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है;

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥ (१२/१९)

जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला, मननशील और किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा सन्तुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है-वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

व्यावहारिक बुद्धि

बुद्धि, स्थूल अंगों की तरह दिखाई नहीं देती है। यह विवेक शक्ति है। विवेक जागा तो हमारी चेतना शुभ कर्मों की ओर बनी रहेगी। परोपकार को धर्म व कर्तव्य मान कर हमारी बुद्धि कल्याण पथ पर चलते हुए व्यावहारिकता के उच्च आदर्श स्थापित कर सकती है। क्या उचित-अनुचित है, किससे भय-अभय होना चाहिए, किसमें बन्धन व मोक्ष है, इत्यादि बातों की सकारात्मक मीमांसा हमें सात्विक व्यावहारिक पथ पर चलाती रहेगी।

हम सद्-व्यवहार की आशा समाज से रखते हैं। सृष्टि के नियम अनुसार जो हम देते हैं वही हमें मिलता है। आज का भौतिक विज्ञान मानता ही है कि 'प्रत्येक क्रिया की समानान्तर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है'। अतः सबको 'अच्छा व्यवहार देना और अच्छा व्यवहार पाना' जीवन व्यवहार की दिशा रहनी चाहिए।

उत्तम मित्र के लक्षण

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति
यद् वा मित्रं शंकितनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत
तद् वै मित्रं संगतानीतराणि॥

जिसके कोप से भयभीत होना पड़े तथा शंकित होकर जिसकी सेवा की जाए, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिस पर पिता की भाँति विश्वास किया जा सके; दूसरे तो संगी मात्र हैं।

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम्॥

पहले से कोई सम्बन्ध न होने पर भी जो मित्रता का बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है।

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः॥

जिसका चित्त चंचल है, जो वृद्धों की सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुषके लिये मित्रों का संग्रह स्थायी नहीं होता।

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा॥

जैसे हंस सूखे सरोवर के आस-पास ही मँडराकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चंचल है; जो अज्ञानी और इन्द्रियों का दास है, उसे अर्थ की प्राप्ति नहीं होती।

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥

दुष्ट पुरुषों का स्वभाव मेघ के समान चंचल होता है। वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं।

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुंजते॥

जो मित्रों से सत्कार पाकर और उनकी सहायता से कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनका मांस माँसाहारी जन्तु भी नहीं खाते।

अर्चयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने ।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्॥

धन हो या न हो, मित्रोंका तो सत्कार करें ही। मित्रों से कुछ भी न माँगते हुए उनके सार - असारकी परीक्षा न करें।

६. हमारी वैज्ञानिक परम्परा

phu] tkiku] frCcr rFkk vU; lHkh iMkslh n'kk dk èke] lLÑfr] lH;rk] foKku]
T;kfr"k] xf.kr 'kkL=k] [kxksy 'kkL=k rFkk fofHkUu m|kxh ,oa oLrq vkfn dh fuek.k dh dyk
vkj okLrq dh fuek.k dh dyk Hkkjr us nhA** & g 'kh ¼vefjdk e phuh jktnr½

संकल्प का आशय – किसी भी धार्मिक कृत्य या पूजा के प्रारम्भ में पुरोहित जी द्वारा कराये जाने वाले संकल्प को हम अर्थ समझे बिना, शुद्ध–अशुद्ध बोलकर दोहरा देते हैं। यहाँ प्रस्तुत है इस संकल्प में आने वाली शब्दावली का अर्थ और इस सृष्टि से हमारा सम्बन्ध –

एकवृन्दः सप्तनवतिकोटिः नवविंशति लक्षः नवचत्वारिंशत्सहस्रः विंशत्यधिक शततमे सृष्टिसंवत्सरे – हमारी सृष्टि की आयु– एक वृन्दः (एक अरब) सप्तनवतिकोटिः (९७ करोड़), नवविंशतिलक्षः (२९ लाख), नवचत्वारिंशत्सहस्र (४९ हजार), विंशत्यधिक शततमे (१२१ वर्ष) है। अर्थात् इस समय हम सृष्टि संवत् के १,९७,२९,४९,१२१वें वर्ष में संकल्प कर रहे हैं।

मासे, पक्षे, वासरे, तिथौ, काले, शुभमुहूर्ते – इसमें वर्तमान समय का उल्लेख किया जाता है, जैसे – आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि सोमवार को प्रातःकाल शुभ मुहूर्त में हम अमुक यज्ञ कर रहे हैं।

समय का पुण्य स्मरण करने से ध्यान में आया होगा कि हमारी संस्कृति कितनी प्राचीन है। हमारे पुरखों ने समय की गणना की श्रेष्ठ परम्परा विकसित की, जो आज तक अक्षुण्ण चल रही है।

इस संकल्प में अब तक हमने जाना कि हम किस कालखण्ड में जी रहे हैं। अब हम जानेंगे कि इस विशाल पृथ्वी पर भौगोलिक दृष्टि से हम कहाँ रह रहे हैं।

जम्बुद्वीपे – 'जम्बु द्वीपे' का अर्थ है, 'जम्बुद्वीप में'। यह जम्बुद्वीप क्या है और कहाँ है? पृथ्वी पर सात द्वीप हैं। हम प्रातःस्मरण में नित्य बोलते हैं, 'सप्तर्षियोद्वीपवनानिसप्तः' अर्थात् ऋषि भी सात हैं, द्वीप भी सात हैं और वन भी सात हैं। इन सात द्वीपों के नाम हैं – १. जम्बुद्वीप, २. प्लक्षद्वीप, ३. शाल्मलिद्वीप, ४. कुशद्वीप, ५. क्रौंच द्वीप, ६. शाकद्वीप, ७. पुष्करद्वीप।

जम्बुद्वीप का क्षेत्र १ लाख योजन है अर्थात् ४१ लाख ४४ हजार वर्ग किलोमीटर। इसकी आकृति कमल की पंखुड़ी जैसी है। जम्बुद्वीप में हम रह रहे हैं।

भरतखण्डे – जम्बुद्वीप के अन्तर्गत हैं नौ खण्ड। इनके नाम थे – १. इलावृत, २. रम्यक, ३. हिरण्मय ४. कुरु, ५. हरिदेश, ६. किंपुरुष, ७. भारत, ८. भद्राश्व, ९. केतुमाल

इन सभी खण्डों का क्षेत्रफल नौ हजार योजन अर्थात् ३,७२,९६० वर्ग किलोमीटर था। इन नौ खण्डों के मध्य में इलावृत खण्ड है। इलावृत के उत्तर में रम्यक, हिरण्मय एवं कुरु नामक तीन खण्ड हैं। इलावृत के दक्षिण में, हरिदेश, किंपुरुष व भारत, ये तीन खण्ड हैं। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व तथा पश्चिम में केतुमाल खण्ड हैं।

ये नौ खण्ड पर्वतों के कारण एक दूसरे से अलग–अलग हैं। इलावृत के उत्तर में नील, श्वेत तथा श्रृंगवान नामक पर्वत हैं। दक्षिण में निषध, हेमकुट एवं हिमालय पर्वत हैं। पूर्व में गंधमादन और पश्चिम में माल्यवान नामक पर्वत स्थित हैं।

खण्ड को वर्ष भी कहते थे, जैसे – भारतवर्ष अथवा भरतखण्ड। आज वर्ष या खण्ड को ही देश कहते हैं। भरतखण्ड या भारतवर्ष ही आज का भारत देश है। और जम्बुद्वीप ही आज का एशिया महाद्वीप होगा, ऐसा अनुमान से कह सकते हैं।

आर्यावर्तान्तर्गते – इस विशाल भरतखण्ड के किस स्थान पर हम रहते हैं? यह पता सरलता से लग जाये, इसलिए इसके भौगोलिक विभाग किये गये। एक खण्ड के अन्तर्गत इन विभागों को आवर्त अथवा पथ कहा जाता था। उदाहरणार्थ आर्यावर्त, कुशावर्त, ब्रह्मावर्त अथवा दक्षिणापथ आदि। सामान्यतः आर्यावर्त अर्थात् उत्तरी भारत, ब्रह्मावर्त अर्थात् पूर्वी भारत, कुशावर्त यानि पश्चिमी भारत तथा दक्षिणावर्त अथवा दक्षिणापथ अर्थात् दक्षिण भारत। आज की शब्दावली में इन्हें ZONE कहते हैं।

आवर्त बड़ा भूभाग होने से इनके भी विभाग थे, उन्हें क्षेत्र कहा जाता था। क्षेत्रों के नामकरण प्रसिद्ध तीर्थ अथवा विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर हुए थे। पूरा देश अनेक क्षेत्रों में बँटा हुआ था। प्रमुख सात क्षेत्रों के नाम थे –

१. कुरुक्षेत्र, २. हरिहरक्षेत्र, ३. प्रभास क्षेत्र, ४. रेणुकाक्षेत्र, ५. भृगुक्षेत्र, ६. पुरुषोत्तम क्षेत्र, ७. सूकरक्षेत्र। प्रमुख क्षेत्रों के अनेक उपक्षेत्र भी थे।

यह सम्पूर्ण भौगोलिक वर्णन प्राचीन पद्धति से हुआ है जिसका आधार सांस्कृतिक था। आज ये नाम प्रचलित नहीं हैं, क्योंकि आज का आधार राजनैतिक भूगोल है।

अभीष्ट कार्य सिद्ध्यर्थम् ..... – संकल्प के अन्त में जिस प्रयोजन से यज्ञ अथवा मांगलिक कार्य करने जा रहे हैं, उसका उल्लेख करते हैं।

अब तक हमने संकल्प में उच्चारित सभी संस्कृत शब्दों का अर्थ जान लिया है, इसलिए इस संकल्प को हम हिन्दी में भी बोल सकते हैं। उदाहरण के लिए संकल्प की हिन्दी शब्दावली इस प्रकार होगी –

ॐ तत्सत्। आज ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में श्रीश्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें कलियुग के प्रथम चरण में सृष्टिसंवत् के एक अरब, सतानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्चास हजार एक सौ इक्कीसवें वर्ष के आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि सोमवार को प्रातःकाल के शुभ मुहूर्त में एशिया खण्ड के भारत देश के हरियाणा प्रान्त के कुरुक्षेत्र जिले के कुरुक्षेत्र नगर के विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान कार्यालय संस्कृति भवन में राष्ट्रीय शिक्षा की सिद्धि हेतु हम ज्ञानयज्ञ कर रहे हैं।

इस संकल्प को दोहराते ही, संकल्प का अर्थ एवं महत्त्व समझ में आ जाते हैं। यह संकल्प बोलने से हम प्रतिदिन परमात्मा के साथ जुड़ते हैं, सृष्टि के साथ जुड़ते हैं, सम्पूर्ण विश्व के साथ जुड़ते हैं तथा अपने पूर्वजों एवं देश, धर्म व संस्कृति के साथ भी जुड़ते हैं। इससे हमें अपने पूर्वजों पर, अपनी कालगणना पर, भारत की चिरंजीविता पर और सबका कल्याण चाहने वाले उदात्त जीवन दर्शन पर गर्व होता है।

हमारे पूर्वजों ने बड़े यत्न से यह श्रेष्ठ 'संकल्प' हम तक पहुँचाया है। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम इसे कंठस्थ करें। जहाँ भी शुभ-मांगलिक कार्य हो वहाँ इसे स्वयं बोलें एवं बुलवायें और अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित करें। तभी हमारी यह ज्ञान परम्परा अक्षुण्ण बनी रहेगी।

भारत ने अध्यात्म, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्रों में प्राचीनकाल में ही उल्लेखनीय प्रगति की थी। ब्रिटिश शासनकाल में भारतीयों को अपने गौरवशाली अतीत एवं तत्कालीन वैज्ञानिक उपलब्धियों के ज्ञान से वंचित रखना एक सोची-समझी राजनैतिक चाल थी।

भारतीय ज्ञान का क्षेत्र सर्वतोमुखी एवं व्यापक था। लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युत्थान हेतु ज्ञानार्जन के लिए हमारे पूर्वज सक्रिय एवं सचेत थे। लौकिक सुख-सुविधाओं के लिए संयत भाव के साथ भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का समन्वय करते हुए विज्ञान का प्रयोग किया गया।

संस्कृत और उसमें उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों की उपेक्षा ने भारतीय विज्ञान के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। प्राचीन भारत में विज्ञान की विविध विधाओं की उज्ज्वल परम्परा रही है। इनमें से कुछ विशेष क्षेत्रों में भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा का वर्णन नीचे दिया जा रहा है –

भारतीय कालगणना

कालगणना की भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों पद्धतियों का मेल किया जा सकता है क्या? पाश्चात्य गणना की सबसे छोटी इकाई भारत के परमाणु से बहुत बड़ी है और सबसे बड़ी इकाई भारत की सबसे बड़ी इकाई से बहुत छोटी है। अत: दोनों पद्धतियों का रूपान्तरण नहीं हो सकता।

भारत के वैज्ञानिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व काल की जो गणना की, वह आज का विज्ञान यन्त्रों की सहायता से करने का प्रयास कर रहा है। हमारे मन में प्रश्न खड़ा होता है कि भारत के वैज्ञानिकों ने यह गणना किस प्रकार की होगी? दो सम्भावनाएँ हैं। या तो उनके पास बिना यन्त्रों के निरीक्षण करने की विद्या रही होगी या उनके पास यन्त्र होंगे जो आज के यन्त्रों से अधिक क्षमता वाले रहे होंगे। उस समय इस प्रकार समय दर्शाने वाली घड़ियाँ थीं जो जल की अथवा रेत की होती थीं। उन्हें घटिका यन्त्र कहते थे। आज पंचांग तैयार करने में, विवाह, वास्तुपूजन, यज्ञ आदि के मुहूर्त तय करने में इस गणना का उपयोग होता है। काल के प्रवाह में निरीक्षण की विद्या विस्मृत हो गई और उस समय के यन्त्र भी नष्ट हो गए।

अब तक हमने सत्ताइसवें महायुग तक की गणना को समझा है। इस कक्षा में हम सत्ताइसवें महायुग से आगे की गणना को समझेंगे –

हम कितने वर्ष के हुए हैं –

१. अभी श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के २७ महायुग बीत चुके हैं। अर्थात् ४३,२०,००० x २७ = ११,६६,४०,००० (ग्यारह करोड़ छियासठ लाख चालीस हजार) वर्ष बीत चुके हैं और अभी अठाईसवाँ महायुग चल रहा है।

२. इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। वैवस्वत मन्वन्तर के अठाईसवें महायुग के सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग बीत चुके हैं। अर्थात्

१७,२८,००० (सत्रह लाख अठाईस हजार) सत्ययुग के वर्ष
+ १२,९६,००० (बारह लाख छियानवे हजार) त्रेतायुग के वर्ष
+ ८,६४,००० (आठ लाख चौंसठ हजार) द्वापर युग के वर्ष
३८,८८,००० (अड़तीस लाख अठासी हजार) वर्ष। कलियुग के भी ५१२४ (पाँच हजार एक सौ चौबीस) वर्ष बीत चुके हैं।

३. श्वेतवाराह कल्प के ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं।

१ मन्वन्तर के ३०,६७,२०,००० (तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार) वर्ष
६ मन्वन्तर के ३०,६७,२०,००० x ६ = ४,८४,०३,२०,००० वर्ष
(एक अरब चौरासी करोड़ तीन लाख बीस हजार) वर्ष बीत चुके हैं और हम श्वेतवाराह कल्प के सातवें मन्वन्तर में जी रहे हैं।

भारतीय चिकित्साशास्त्र

पहले रोग पनपने देते फिर उसका उपचार करें,
आग लगा फिर उसे बुझाने जैसा क्यों व्यवहार करें?
आयुर्वेद कहे रोगों का जन्म न हो वह मार्ग चुनो।
सौ बसन्त तक स्वस्थ रहो सब उस पद्धति को आओ गुनो।।

भारतीय चिकित्साशास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त विस्तृत विवरण से पता चलता है कि वैदिक काल में ही चिकित्सा क्षेत्र में भारत बहुत उन्नति कर चुका था। प्रतिदिन बोले जाने वाले शान्तिपाठ 'ॐ द्यौ शान्तिः' में 'औषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्ति' बोलते हैं। बॉटनी की टैक्सोनॉमी में वर्तमान वनस्पतिशास्त्री १९६० के दशक में इसकी चर्चा करते हैं जबकि भारत में वेद मन्त्र में औषधि-वनस्पति का अलग-अलग उल्लेख है।

चिकित्साशास्त्र का जन्मदाता वेद - वेदों में आयुर्वेद एवं चिकित्सा करने वालों को भिषक् कहा गया है। सैकड़ों भिषकों और हजारों भेषजों (जड़ी-बूटियों) का उल्लेख वेदों में मिलता है। अनेक औषधियों एवं उनके प्रभाव के विषय में सूक्त हैं। खाँसी, ज्वर, कुष्ठ रोगों और उनकी चिकित्सा के लिए जड़ी-बूटियों की जानकारी दी गई है। कृमियों द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों की भी चर्चा है। वन, पर्वत, जल, पशु, वनस्पति सभी में कृमि होते हैं। इनकी अनेक प्रजातियाँ हैं। जिनमें से कुछ रोग उत्पन्न करते हैं। सूर्य-किरणों द्वारा कृमियों के नष्ट हो जाने का एक मन्त्र में स्पष्ट संकेत है। मच्छरों के विष से रोग फैलते हैं, अथर्व आदि वेदों के ऋषियों को इसकी भी जानकारी थी। मच्छरों को नष्ट करने में समर्थ एक विषनाशक वनस्पति का भी उल्लेख है।

अथर्ववेद में रोहिणी या अरुन्धति नाम की एक ऐसी वनस्पति का उल्लेख है जो टूटी हड्डी को जोड़ देती है। अरुन्धति के समान हड्डी जोड़ने वाली औषधि 'लाक्षा' या 'सिलाची' का भी वर्णन है। डण्डे, बाण या किसी प्रकार की चोट को यह अच्छा कर देती है। साधारण रोगों के उपचार के लिए अपामार्ग, पिप्पली और अरुन्धति आदि वनस्पतियाँ हैं जिनका उपयोग रोग शमन के लिए किया जाता है।

कुछ प्रख्यात आयुर्वेदविदों की संक्षिप्त जानकारी नीचे दी जा रही है -

अश्विनीकुमार -

अश्विनीकुमार नाम के दोनों भाई देवताओं के वैद्य कहे जाते हैं। इनकी चिकित्सा से गुरु बृहस्पति का पुत्र कच रोगमुक्त हो गया। पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को दिया था। अश्विनीकुमारों ने दक्ष से यह ज्ञान प्राप्त किया था। उनका चिकित्सा कौशल इतना अद्‌भुत था कि उन्होंने वृद्ध च्यवन ऋषि को जड़ी-बूटियों का सेवन कराकर पुनः नवयुवक बना दिया था। स्वयं अश्विनीकुमार चिर युवा ही हैं।

धन्वन्तरि -

अश्विनीकुमारों के समान ही पौराणिक कथाओं में आयुर्वेद के आचार्यों तथा देवताओं के चिकित्सक धन्वन्तरि का भी गुणगान किया गया है। देव-दानवों द्वारा मिलकर किए गए समुद्र मंथन से जो चौदह रत्न समुद्र से प्राप्त हुए थे उनमें अमृत कलश लिये हुए धन्वन्तरि भी एक थे। समुद्र मन्थन को एक रूपक मानकर कहा जा सकता है कि ज्ञान समुद्र को मथकर धन्वन्तरि, मानव-कल्याण के लिये चिकित्साशास्त्र रूपी अमृत कलश को लेकर प्रकट हुए। धन्वन्तरि का अर्थ है- धनु अर्थात् शल्य शास्त्र तथा अन्तरि अर्थात् अन्दर प्रवेश किया हुआ, अर्थात् शल्य शास्त्र में प्रवीण। शल्य शास्त्र के महान् चिकित्सक सुश्रुत धन्वन्तरि के प्रमुख शिष्य थे।

चरक –

चरक संहिता में दी गई स्वस्थ मनुष्य की परिभाषा आधुनिक चिकित्साशास्त्र से अधिक व्यापक तथा उपयुक्त है।

चरक ने कहा, जो जहाँ रहता है, उसी के आस-पास प्रकृति ने रोगों की औषधियाँ दे रखी हैं। अतः वे अपने आसपास के पौधों, वनस्पतियों का निरीक्षण व प्रयोग करने का आग्रह करते थे। यह हमें पर्यावरण अर्थात् आसपास के वृक्ष-वनस्पति-प्राणी-खनिज आदि की रक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करता है। विश्व के अनेक आयुर्वेद आचार्यों के विचार-विमर्श की फलश्रुति चरक संहिता के रूप में सामने आई। इस संहिता में औषधि की दृष्टि से ३४१ वनस्पतिजन्य, १७७ प्राणिजन्य तथा ६४ खनिज द्रव्यों का उल्लेख है।

सुश्रुत -

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की मुख्य विशेषता शल्य चिकित्सा (सर्जरी) मानी जाती है। इस पद्धति में भी प्राचीन भारतीय चिकित्सकों का ज्ञान बढ़ा-चढ़ा था। सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्री विद्वान् प्रोफेसर वेबर (weber) के अनुसार प्राचीन भारतीयों ने शल्य चिकित्सा में इतनी निपुणता प्राप्त कर ली थी कि यूरोपियन चिकित्सक अब भी उस प्राचीन पद्धति से लाभ उठा सकते हैं। प्लास्टिक सर्जरी तो उन्होंने भारत से ही सीखी। शल्य चिकित्सा पद्धति में सुश्रुत ने परिष्कार करके उसमें असाधारण निपुणता प्राप्त की। शल्य क्रिया (आपरेशन) के अनेक उपयोगी उपकरण एवं यंत्र बनाये। इन उपकरणों की संख्या १२५ के लगभग है। विद्यार्थियों के लिए शल्य चिकित्सा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने और उसका अभ्यास करने की उचित व्यवस्था सुश्रुत के गुरुकुल में थी। इसके लिये आरम्भ में फलों, मोम के पुतलों और मरे हुए जानवरों के और बाद में मानव शवों के विच्छेदन का भी अभ्यास कराया जाता था।

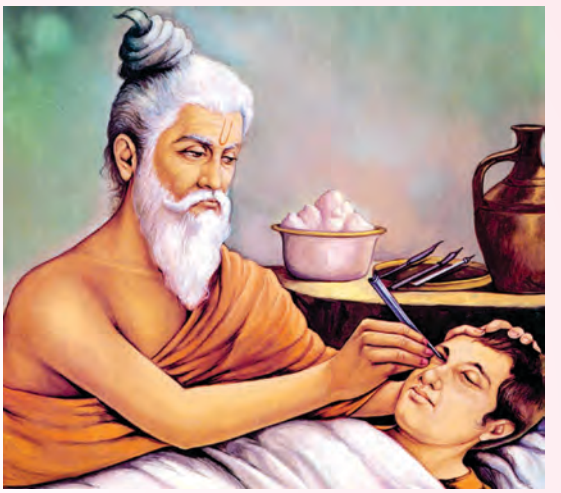

प्राचीन शल्य चिकित्सक - सुश्रुत

आयुर्वेद मनीषियों ने दार्शनिकों के समान विश्व ब्रह्माण्ड की रचना के आधार पर पंचमहाभूतों- आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को मानव शरीर रचना का भी आधार मानकर आकाश और वायु की प्रधानता से वात, अग्नि और जल की प्रधानता से पित्त एवं जल और पृथ्वी की प्रधानता से कफ की उत्पत्ति बताई। आयुर्वेद चिकित्सा में प्रयुक्त सभी प्रकार की औषधियों - उद्भिज, जैविक तथा खनिज के गुणों का अध्ययन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि उनमें किस दोष का क्या प्रभाव पड़ेगा? औषधियों के साथ ही खाने-पीने की प्रायः सभी प्रमुख वस्तुओं के निरीक्षण और परीक्षण के बाद चरक और सुश्रुत ने जो मन्तव्य दिये थे, आज भी उतने ही उपयोगी और व्यावहारिक हैं। आज खाद्य पदार्थों के पोषक तत्वों की गहन जाँच पड़ताल के बाद जो निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं, उनसे आयुर्वेद मनीषियों द्वारा प्रदत्त तथ्यों की पूर्णतया पुष्टि होती है।

वाग्भट्ट -

वाग्भट्ट ने ६२५ ई० में दो ग्रन्थों की रचना की थी-'अष्टांगहृदयसंहिता' और 'अष्टांग संग्रह'। संहिता में उन्होंने चरक, सुश्रुत, भेल और हारीत की संहिताओं के सार को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया और काय चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा के विषय में नयी जानकारियाँ सम्मिलित कीं। उन्होंने विभिन्न रोगों के उपचार बताने के साथ ही बिना औषधि उपयोग के स्वस्थ रहने के उपाय भी बतलाये।

भारतीय विद्याएँ

ज्ञान सिन्धु अगाध भारत का चौदह विद्या का रत्न समान।
सर्वोत्तम सारस्वत सम्पत्ति ऋषियों ने की हमें प्रदान॥

कुछ वेदांग हमने पूर्व कक्षा में जाने। शेष का परिचय अब प्राप्त करेंगे –

छन्द

ढँकने की क्रिया को छन्द कहते हैं। वेदों का रस, भाव और वर्णन किया गया विषय छन्द से ढँका रहता है। साधारण भाषा में समझें तो जैसे किसी कविता के रस, भाव, विषय को बताने के लिए कवि उसे दोहा, चौपाई आदि छन्द में बाँधकर बताता है वैसे ही वैदिक मंत्र भी विभिन्न छन्दों में व्यक्त हुए हैं। ये छन्द सामान्य कविता के छन्दों से अलग हैं। वैदिक छन्दों को अक्षरों की संख्या से पहचाना जाता है। महर्षि पिंगल का 'छन्दःसूत्रम्' छन्दशास्त्र का मूल ग्रन्थ है। इसमें वैदिक और लौकिक छन्दों पर प्रकाश डाला गया है।

ज्योतिष

ग्रह- नक्षत्र आदि खगोलीय पिण्डों की स्थिति और गतियों का अध्ययन और उनका पृथ्वीवासियों के जीवन पर प्रभाव जानने का विज्ञान ज्योतिष है। भारत में इस विद्या का सर्वाधिक विकसित स्वरूप प्राप्त होता है। कालगणना के आधार पर वर्षों पूर्व ही आगामी पर्वों एवं ग्रहण आदि घटनाओं की सटीक जानकारी पञ्चांग में लिखी रहती हैं। प्राचीन भारत में ग्रह-नक्षत्रों की गति एवं स्थिति के आकलन के लिए वेधशालाएँ निर्मित की गई थी। नारद, पराशर और वसिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियों के अतिरिक्त 'वेदांग ज्योतिष' नामक ग्रंथ के रचयिता आचार्य लगध, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य आदि इस विद्या के प्रमुख विद्वान् हुए हैं।

ये छः वेदांग वेद पुरुष के कौन से अंग हैं, यह भी जानना रोचक होगा। शिक्षा को नाक, कल्प को हाथ, व्याकरण को मुख, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्त को कान, छन्द को चरण, इन विद्याओं के गुणधर्म के अनुसार ही वेद रूपी पुरुष के अंगों के रूप में इनकी संकल्पना की गई है।

धर्मशास्त्र

'धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः' सूत्र के अनुसार धर्मशास्त्र से तात्पर्य स्मृति ग्रन्थों से है। वेदों के नियमों- मर्यादाओं के अनुरूप मनुष्यों के कर्तव्यों का बोध कराने के लिए विद्वान् ऋषियों ने जिन ग्रन्थों की रचना की वे स्मृति ग्रंथ कहलाए। इनमें प्रमुख रूप से ये विषय आए हैं : (१)आचार अर्थात् विभिन्न वर्ण-आश्रम के मनुष्यों को क्या करना, क्या नहीं करना (धर्म-अधर्म) सिखाना, राजा व प्रजा के काम, नियम, दण्ड प्रणाली आदि का निर्देश, जिससे सभी अपना कर्तव्य जान सकें। (२) व्यवहार- नियम पालन, नियंत्रण अधिकार, सम्पत्ति विषयक नियम, कर प्रणाली आदि और (३) प्रायश्चित- समाज व धर्म के नियमों के विपरीत काम करने वालों को प्रायश्चित करने का विधान।

नारद, शुक्राचार्य, वेदव्यास, पाराशर, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज तथा देवल आदि अनेक ऋषियों के सौ से अधिक स्मृति ग्रंथ हैं। इनमें पच्चीस स्मृतियाँ प्रमुख हैं जिनमें मनुस्मृति सबसे प्रसिद्ध है। मूलतः यह ज्ञान ब्रह्मा से स्वायंभुव मनु ने सीखा था। यह बारह अध्यायों में विभक्त है। मनुस्मृति को पढ़ने पर अनेक भ्रान्तियों का स्वयमेव शमन हो जाता है तथा करणीय-अकरणीय कार्यों की स्पष्टता होती है।

भारतीय संगीत की देन

मानव जीवन के तीन शाश्वत मूल्य- सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् - संस्कृति एवं धर्म के आधारस्तम्भ हैं। संगीत में भी इन मूल्यों को अन्तर्निहित माना गया है। सभी धर्मों का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर से एकाकार होना है। संगीत का ध्येय इसी अवस्था को प्राप्त करना है। आज जब सम्पूर्ण विश्व में अशान्ति, भय एवं युद्ध का विनाशकारी स्वरूप व्याप्त है, भारतीय संगीत मानव की शान्ति के लिए बड़ा अवसर है। भारत में संगीत का स्रोत सामवेद तथा उपवेद गान्धर्ववेद को माना जाता है। पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, विश्वशान्ति, भक्तिभाव तथा अध्यात्म का मार्ग अपनाते हुए भारतीय संस्कृति निरन्तर सुदृढ़ होती रही है। इन मूल्यों की स्थापना में संगीत का भी महत्त्व और योगदान रहा है। प्राचीन ऋषि-मुनि, साधु-सन्त, युग-कवि तथा लोक-मानव अपने उद्‌गारों की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से करते रहे हैं। भारतीय आचार्यों ने संगीत को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय माना है। संगीत रत्नाकर में कहा गया है –

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः।
गोपीपतिरनन्तोऽपिवंशध्वनिवंशगतः।।

भावार्थ : पार्वती पति शिव भी गीत से प्रस्नन होते हैं। गोपीपति श्रीकृष्ण भी वंशी की ध्वनि वशीभूत होते हैं।

कृषि विज्ञान (Agricultural Sciences)

भारतीय कृषि के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल से ही भारत में वर्षा के मापन, उसकी भविष्यवाणी, कृषि-पंचांग, बीज-स्वास्थ्य, प्रबन्धन तथा पौधों की बीमारियों को महत्त्व दिया जाता था। विभिन्न फसलों के लिए समुचित समयसारिणी थी। सिंचाई को प्रमुखता दी जाती थी। फसलों और पशुओं के लिये पादप संसूचक (Indicators) तथा कुएँ खोदने के लिए भूमि जल-संसूचकों के बारे में विद्वानों ने जानकारी दी थी। आज के सन्दर्भ में यह आश्चर्यजनक लगता है कि उस समय भी पौधों की उन्नत प्रजातियाँ तैयार करने पर ध्यान दिया जाता था।

भारतवर्ष चावल, जूट, कपास तथा दालों; आम और नींबू जैसे फलों; काली मिर्च आदि मसालों तथा गेहूँ, राई, अलसी, सेब, नाशपाती, अखरोट आदि के उत्पादन का प्रमुख केन्द्र था। गेहूँ, जौ, कपास आदि का उत्पादन तथा हल, बीज, पहियों वाली गाड़ियों आदि उपकरणों का उपयोग हड़प्पा सभ्यता (लाहौर से लगभग १६० किलोमीटर दूर) की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। लोथल में अनाज भण्डारण के पात्र भी मिले हैं। केला, गन्ना, रतालू आदि पौधों के वनस्पतिवर्धन (Vegetative propagation) की जानकारी उपलब्ध थी। खेती व अन्य उपयोगों के लिए पशुओं को पालतू बनाया गया था। अनाज के व्यापार में परिवहन हेतु नौकाओं का उपयोग किया जाता था। कपास की सफाई, कताई तथा बुनाई में प्रयुक्त होने वाले उपकरण भी मिले हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कृषि

ऋग्वेद की ऋचाओं में पर्यावरण, पशुपालन, वानिकी, कृषि संसाधनों और कार्यप्रणाली के विभिन्न पहलुओं का वर्णन है। कृषिसूक्त और अक्षसूक्त में खेती के महत्त्व को दर्शाया गया है। अथर्ववेद की ऋचाओं में पादप (वनस्पति) सुरक्षा, पवित्र उपवनों तथा अशोक, पीपल व बरगद आदि पवित्र वृक्षों का वर्णन है।

कृषि पाराशर - (४०० ईसा पूर्व)

यह पुस्तक कृषि से सम्बन्धित प्राचीनतम पुस्तक है। इसमें कृषि प्रबन्धन, कृषि उपकरण, पशु विज्ञान (प्रबन्धन, सुदूर यात्रा, खाद), कृषि प्रक्रियाओं-बुआई, निकासी, कटाई, प्रत्यारोपण, पादप संरक्षण, निराई (weeding) जलधारण, वर्षा (प्रति माह प्रेक्षण, पूर्वानुमान, ग्रहों का प्रभाव, अकाल, सूचकांक) जैसे विषयों का समावेश है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र - (३०० ईसा पूर्व)

इस ग्रन्थ में कृषि से सम्बन्धित अलग प्रखण्ड है, जिसमें कृषि प्रक्रियाओं, मौसमी फसलों और नदी-तालों के उपयोग का वर्णन है।

वराहमिहिर की बृहत्संहिता - (५०० ईसा पूर्व)

इस ग्रन्थ का कृषि प्रखण्ड अत्यन्त विस्तृत है और इसमें मिट्टी के वर्गीकरण, सिंचाई प्रणालियों तथा कृषि उपकरणों आदि का वर्णन है।

कश्यप का कृषिसूक्त - (८०० ई॰) इसमें उपयोगी पौधों को लगाने का वर्णन है।

सुरपाल का वृक्षायुर्वेद - (१००० ई॰)

इसमें पादप (वनस्पति) विज्ञान, पौधों की बीमारियाँ व उपचार, वृक्षारोपण, बीज बुवाई, भूजल, मिट्टी वर्गीकरण व चयन, उद्यानों तथा उद्यानिकी का समावेश है।

मोहन-जो-दड़ो में पीतल की कुल्हाड़ियाँ, हड़प्पा से प्राप्त अन्न भण्डार पात्र, भरहुत से प्राप्त मेडल पर बैलगाड़ी का चित्र, साँची से प्राप्त लोहे की दराँती व खुरपी भारतीय कृषि की प्राचीनता को प्रमाणित करती हैं।

जैव रासायनिकी (Bio-Chemistry)

जीवित तंत्रों और जैव रासायनिकों में एन्जाइमों द्वारा उत्प्रेरित रासायनिक अभिक्रियाओं से सम्बन्धित विज्ञान को जैव रासायनिकी नाम दिया गया है।

वैदिक ग्रन्थों में किण्वन तथा आसवन (Fermentation & distillation) द्वारा मधु, सुरा व सोम आदि रासायनिक घोलों को तैयार करने की विधि का वर्णन है। ऋग्वेद की ६०० से अधिक ऋचाओं में किण्वित (Fermented) घोलों का उल्लेख है। रसरत्न ग्रन्थ में प्रयोगशाला के विवरण में सामान्यतः उपकरणों की व्यवस्था - अलिक (गेज), चक्का, घिर्टी, तुला, धोंकनी, धातुनलिका, जलयुक्त पात्र, लौह संदलित, पेषणी, खरल, विभिन्न प्रकार के छेदों वाली जालियों के साथ छलनी, उपयुक्त मिट्टी, भूसी, रुई व गोबर की टिकिया इत्यादि का विवरण उपलब्ध है।

भौतिक विज्ञान (Physics)

भारत में भौतिक विज्ञान की विचारधारा का धर्म और अध्यात्म से अति निकट का सम्बन्ध रहा है। विभिन्न ऋषियों और चिन्तकों ने अपने चिन्तन-मनन तथा अन्तःप्रज्ञा द्वारा भौतिक जगत् के अनेक रहस्यों पर प्रकाश डाला। यजुर्वेद के एक मन्त्र में अग्नि की स्तुति करते हुए कहा गया है - 'हे अग्निदेव! जल में तुम्हारा स्थान है, तुम औषधियों में व्याप्त हो और गर्भ में रहते हुए फिर प्रकट होते हो।' ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया 'जो बिना ईंधन की अग्नि जल के भीतर दीप्त हो रही है, मेधावी लोग यज्ञ में जिसकी स्तुति करते हैं।' बिना ईंधन के जल के भीतर प्रदीप्त होने वाली अग्नि अर्थात् विद्युत्।

आधुनिक युग के अनेक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक और भौतिकशास्त्री मानने लगे हैं कि पदार्थ के अस्तित्व में किसी चेतन शक्ति को स्वीकार किये बिना भौतिक जगत् की सही-सही व्याख्या सम्भव नहीं है। इन वैज्ञानिकों में नोबल पुरस्कार विजेता डॉ॰ जार्ज वाल्ट भी सम्मिलित हैं।

७. हमारा गौरवशाली अतीत

lU;kfl;k Hkkiky pØofr;k dh tUe Hk]
Loèkeèo t Qgjk x; tkfo'oHkj enj njA
luk vrhr xk jgk fot;Jh d xku]
Hkjr Hk egku g] egku g] egkuAA

हमारे विजेता सम्राट

राजेन्द्र चोल

११वीं शताब्दी में दक्षिण भारत में चोल राजवंश का उदय हुआ। चोल साम्राज्य के विस्तार व विकास का श्रेय राजराज चोल को जाता है जो सन् ९८५ में सिंहासनारूढ़ हुए थे। इन्हीं राजराज चोल के पुत्र राजेन्द्र चोल प्रथम हुए, जिन्हें सन् १०१२ में युवराज बनाया गया। ये अपने पिता के समान ही पराक्रमी थे। सन् १०१७ में उन्होंने लंका पर अधिकार कर लिया। राजेन्द्र चोल ने उत्तर पूर्व में बंगाल के पालवंशीय राजा महीपाल को पराजित कर गंगातट तक अपने राज्य का विस्तार किया। इस साहसिक विजय अभियान की स्मृति में राजेन्द्र चोल ने 'गंगैकोण्ड' की उपाधि धारण की। राजेन्द्र चोल के पास शक्तिशाली नौसैनिक जहाजी बेड़ा था, जिसकी सहायता से कराह (वर्तमान मलयेशिया का प्रायद्वीपीय भाग) तथा सुमात्रा को विजित कर शैलेन्द्र वंशीय राजा विजयोत्लुंगवर्मन को बंदी बना लिया तथा उसकी राजधानी 'श्रीविजय' पर अधिकार कर लिया। पराजित राजा द्वारा अधीनता स्वीकार करने के बाद उसे मुक्त कर पुनः वहाँ का शासक घोषित कर दिया। 'श्रीविजय' साम्राज्य उस समय सम्पूर्ण दक्षिण एशिया तक फैला था। राजा राजेन्द्र चोल ने मलय प्रायद्वीप और दक्षिण भारत के बीच वाणिज्यिक सम्बन्धों को अधिक विस्तार देने और सम्पुष्ट करने के लिए प्रयत्न किया। इस अभियान के बीच पड़ने वाले अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह को भी विजय किया। इन विजयों के उपलक्ष्य में राजेन्द्र चोल ने अपनी नई राजधानी की स्थापना की और उसका नाम रखा 'गंगैकौण्ड चोलपुरम्'। तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली जनपद में 'गंगकुण्डपुरम्' के नवीन नगर में भव्य राजप्रासाद के साथ तंजावुर के सुप्रसिद्ध बृहदीश्वर मंदिर की अनुकृति पर एक शिव मन्दिर का निर्माण कराया। यह मन्दिर चोलकालीन स्थापत्य कला का भव्य प्रतिमान है। राजधानी में एक विशाल सरोवर का निर्माण कराया जिसे चोलगंगा कहा गया। यह तत्कालीन जल व्यवस्था स्थापत्य का भव्य प्रतीक है। इनके शासनकाल में वेदाध्ययन, वैदिक शिक्षा एवं दर्शन का विकास प्रमुखता से हुआ। पण्डित चोल, मुडिगुण्डचोल जैसी उपाधियों से स्पष्ट होता है कि राजेन्द्र चोल अत्यन्त विद्यानुरागी शासक था। इनके शासन में चोल साम्राज्य अपने वैभव के शिखर पर था।

स्वतन्त्र भारत पर थोपे गए युद्ध

कारगिल युद्ध -

१९४७, १९६५ तथा १९७१ के तीन-तीन युद्धों में करारी हार के बाद भी पाकिस्तान नहीं सुधरा। १९९९ की सर्दियों में बर्फबारी का लाभ उठाकर पाकिस्तानी सैनिकों ने "नो मेंस लेंड" में कारगिल पर्वत की चोटियों पर कब्जा कर लिया। १९९९ में गर्मियों में मौसम साफ होते ही कारगिल की घुसपैठ को दूर करने के लिए भारतीय सेना ने १८ हजार

फीट की ऊँचाई पर अभियान प्रारम्भ किया। ३ मई को प्रारम्भ यह अभियान २६ जुलाई १९९९ को पूर्ण हुआ। इस अभियान में भारत के ५२७ सैनिकों ने सर्वोच्च बलिदान किया जबकि पाकिस्तानी सेना के ३ हजार से अधिक सैनिकों को मौत के घाट उतारा गया। थलसेना के साथ-साथ भारतीय वायुसेना ने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय देकर कारगिल युद्ध में विजय प्राप्त की।

वन्देमातरम् की गाथा

'वन्देमातरम्' के व्याख्याकार श्री अरविन्द ने 'ऋषि बंकिमचन्द्र' प्रबन्ध में तीन विशेषताओं पर विशेष जोर दिया : "प्रथमतः बंकिम की समस्त रचनाओं का श्रेष्ठभाव है स्वदेश-धर्म, द्वितीयतः जिस नवीन प्रेरणा से उद्‌बुद्ध होकर हम नवजागरण एवं स्वाधीनता की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं, उसके प्रेरणादाता एवं राष्ट्रगुरु हैं बंकिमचन्द्र। तृतीयतः उनका सर्वोत्कृष्ट अवदान है जननी जन्मभूमि का मातृरूप-दर्शन।"

स्वदेश के लिये मातृत्व भाव जगाने वाले 'वन्देमातरम्' मन्त्र को साकार रूप देने एवं उस रूप को भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए बंकिमचन्द्र जी ने आनन्दमठ का सृजन किया। 'वन्देमातरम्'! शिवत्व का भाव निर्माण करने वाला, हृदय आलोकित करने वाला अनोखा काव्य है। 'वन्देमातरम्' ने मन से अचेतन भारतीय जनता की चिति जाग्रत कर स्वाधीनता का शंखनाद किया।

ब्रिटिश शासन के भारत सचिव द्वारा बंगभंग प्रस्ताव स्वीकारने के १०वें दिन श्री कृष्णकुमार मित्र ने फिर से विदेशी के बहिष्कार का आह्‌वान किया, जिससे बंगाल की जनता को दिशाबोध हुआ। बंगभंग की सरकारी घोषणा होते ही उसी दिन चन्द घण्टों में लोग 'कॉलेज मैदान' पर एकत्रित हुए। उन्होंने स्वदेशी की शपथ ली। उसकी पद्धति भी अभिनव थी। अग्नि प्रज्वलित की गई। उसमें विदेशी वस्तुओं की आहुतियाँ समर्पित की गई। बिना मंत्रघोष आहुति कैसी? माता की मुक्ति हेतु यज्ञ आंदोलन का घोष था- 'वन्देमातरम्'। प्रत्येक आहुति देते समय घोष उठता था- 'वन्देमातरम्'। लोग निरन्तर मैदान पर आते रहे, उनके परिधान की शाल, विदेशी कुर्ते समर्पित होते रहे, साथ-साथ वे 'वन्देमातरम्' कहते रहे। नवागत कहते थे 'वन्देमातरम्'- अभ्यागत उससे भी जोर की आवाज में प्रतिसाद देते थे 'वन्देमातरम्'। नारों से आकाश गुंजायमान हो उठा। अग्नि की लपटें आसमान छू रही थीं। 'वन्देमातरम्' घोष सुनते-सुनते लगता था कि नारों की आवाज अग्निज्वालाओं के कण्ठों से आ रही हैं। यह बहिष्कार आन्दोलन आग की लपटों जैसा बंगाल से देशभर में फैल गया।

७ अगस्त १९०५ बंगभंग के विरोध का दिन था। कलकत्ता के टाऊन हाल में बड़ी सभा हुई। यही वह सभा है जिसने भारतवासियों को 'वन्देमातरम्' का नारा दिया। छोटी-छोटी टोलियों में लोग 'वन्देमातरम्' गाते हुए वहाँ पहुँच गये। विशाल जन समूह उमड़ पड़ा था। कृष्णकुमार जी द्वारा प्रस्तावित 'बायकॉट' प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। सभा में उपस्थित श्रमिक वर्ग ने शपथ ली "हम विदेशी वस्तु का उपयोग करने वालों के घर काम नहीं करेंगे।"

प्रचण्ड सभा को एक मंच से सम्बोधित करना कठिन था। चार मंच बनाये गये। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, भूपेन्द्र, अम्बिकाचरण मजूमदार, कासिम बाजार के महाराजा, इन चार महानुभावों ने सभा को सम्बोधित किया। सभा के अन्त में

हजारों लोगों ने एक साथ गर्जना की 'वन्देमातरम्'। अभूतपूर्व दृश्य था यह। वह घोष सुनते-सुनते भारत माँ की आँखें सजल हुई होंगी, आनन्द से वह सोचती होगी – 'मेरे सुख के दिन आ रहे हैं।'

१४ अप्रैल, १९०६ को बंगाल प्रान्त में काँग्रेस का अधिवेशन था बंगाल के प्रभावी नेता अश्विनी कुमार नेतृत्व कर रहे थे । इसमें महिलाओं की संख्या उल्लेखनीय थी। शासन विरोध और दमन कर रहा था। उसे जल, थल, काष्ठ और पाषाण सभी में 'वन्देमातरम्' दिखाई दे रहा था। एक घर के खंभे पर 'वन्देमातरम्' अंकित था। पुलिस ने उसे मिट्टी में मिला दिया था।

एक छोटा बालक रसोईघर में 'वन्देमातरम्' शब्द बार-बार बोल रहा था। गश्ती पुलिस उसे खींचकर कोर्ट के सामने ले गई और उसे कोड़े मारे गए। कोड़े लगने पर भी वह 'वन्देमातरम्' बोल रहा था।

१५ अप्रैल १९०६ को द्वितीय चरण की सभा हुई। अश्विनी बाबू ने प्रस्ताव रखा कि १४ अप्रैल १९०६ की सभा में लाठी खाने वालों और बन्दी बनाए गए वीरों के सम्मान में स्मृति स्तम्भ बनाया जाए, जिससे वीरगाथा युग-युग तक बनी रहे। 'वन्देमातरम्' की घोषणा के साथ लोगों ने स्वेच्छा से नकद रुपये, अँगूठी, कंगन, माला आदि इस पवित्र कार्य के लिए अर्पित कर दिए।

नरोत्तमपुर की सरोजिनी देवी ने अपने स्वर्ण कंगन दान करते हुए प्रतिज्ञा की कि जब तक बंगाल की सड़कों पर 'वन्देमातरम्' बोलने पर प्रतिबन्ध रहेगा, तब तक मैं स्वर्ण कंगन नहीं पहनूँगी। 'वन्देमातरम्' की गूँज ही मेरा अलंकार है, सौभाग्य है।

लगातार जुलूस निकलते रहे। एक माह बाद 'वन्देमातरम्' से प्रतिबन्ध हटा। जुलूस का गीत था –

बल सिंहनादे जय-जय रवे 'वन्देमातरम्'
उठुक भवे शुनुक सबे मंत्र गंभीरतम्
वन्देमातरम् वन्देमातरम्।

(सिंह की तरह दहाड़ते हुए जय-जय स्वर में 'वन्देमातरम्'। विश्व गुंजायमान हो। सब लोग सुनें गम्भीरतम मंत्र 'वन्देमातरम्'।)

मातृत्व की त्रिधाराएँ –

विश्व में माँ का करुणामय, दयामय स्वरूप सर्वमान्य है, परन्तु उसका 'विनाशक' रूप हिन्दुत्व की अनमोल देन है। एक ही शक्ति, कार्य बहुविध! जैसे- विद्युत् कुएँ से पानी खींचती है, गीजर में पानी गरम करती है, फ्रिज में ठंडा और वही विद्युत् शॉर्ट-सर्किट से क्षणभर में सब कुछ राख के ढेर में रूपान्तरित कर सकती है। उसी तरह जननी-जन्मभूमि-जगन्माता कार्य करती है। इन त्रिविध कार्य-शक्तियों का वर्णन करते हुए 'वन्देमातरम्' में कवि कहते हैं-

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी ।

जीवन में सर्वाधिक महत्त्व की है आकलन शक्ति – सूझ-बूझ की शक्ति। मनुष्य प्राथमिक अवस्था में निसर्ग के विविध रूपों से भयभीत होता था। देखते-देखते उसको बोध हुआ कि इस शक्ति से मेरा भी कुछ रिश्ता है। मैं तो उसी से

जन्मा हूँ, उसका ही अंश हूँ। इसके प्रति मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है। रिश्ते-नाते का यह बोध ही वाणी-विद्यादायिनी शक्ति है।

मनुष्य जीवनयापन के लिए निरन्तर आदान-प्रदान करता रहता है, विनिमय की इस साधन शक्ति को हम कहते हैं लक्ष्मी-कमला। प्राप्त सम्पत्ति के रक्षण के लिये संघर्ष करना पड़ता है तब वही दण्डशक्ति दुर्गा कहलाती है। जब कभी देवशक्ति असुरों के विनाश में असमर्थ हुई, उन्होंने इसी जगद्धारिणी का आह्वान किया। वे प्रगट हुईं और असुरों का विनाश किया।

वन्देमातरम् में त्रिविध रूपों की साधना अन्तर्निहित है। वह साधना ही यशस्वी जीवन की आधारशिला है। माँ-मातृभूमि की साधना ही जगन्माता की साधना है। भगिनी निवेदिता कहती हैं, "देह और देव के बीच में देश है।" माँ और जगन्माता के बीच मातृभूमि है, जो राष्ट्र का आधार है।

जन-जन के हर कण्ठ का है गान वन्दे मातरम्।
अरिदल थर-थर काँपे सुनकर नाद वन्दे मातरम्॥

हमारे बालवीर

प्रिंस

केरल राज्य के कोट्टयम जिले में पालई नाम का एक कस्बा है। इसी कस्बे के निकट अरुनापुरम् नाम का एक गाँव है। यहाँ 'व्यापना हाउस' में मालकिन और उनका बेटा आराम की नींद सोए हुए थे। २४ जुलाई १९९९ की रात। चारों तरफ सन्नाटा फैला हुआ था। अचानक उनकी नींद खुल गई। उन्होंने अपने पास सोए हुए १५ वर्ष के बेटे प्रिंस वी. डोमनिक की ओर देखा तो वह मजे की नींद सोया हुआ था।

अचानक उन्हें खिड़की का शीशा टूटने की आवाज सुनाई दी। उन्हें अनुभव हुआ कि साथ वाले कमरे में कोई दबे पाँव चल रहा है। इस सच्चाई का सामना करना था कि उनके घर किसी बाहरी व्यक्ति का प्रवेश हो चुका है। उन्होंने बहुत ही धीरे से प्रिंस को जगाया और बिना मुँह से एक भी शब्द बोले उसे संकेत में सारी बात बता दी।

अब बारी उनकी थी। वे दोनों चुपके से अपने बिस्तर से उठे। हथियार के नाम पर जहाँ प्रिंस के पास उसकी हिम्मत थी, वहीं उसकी माँ ने बिस्तर के साथ रखी टॉर्च को अपने हाथ में उठा लिया था। अब वे दोनों कमरों के बीच के दरवाजे के पास बिना आहट किए खड़े हो गए। जब चोर ने घर के लोगों को जगा हुआ अनुभव किया तो वह जहाँ का तहाँ मूर्ति की तरह दम साधकर खड़ा हो गया। प्रिंस की माँ ने टॉर्च को घुमाया तो उसके प्रकाश में एक अनजाना चेहरा दिखाई दिया। उन्होंने चोर की आँखों पर रोशनी की। इसी बीच प्रिंस नीचे से अंधेरे में होता हुआ चोर के एकदम पीछे जा पहुँचा। प्रिंस ने चोर की कमर को हाथों समेत कसकर पकड़ लिया। लाख प्रयत्न के बाद भी चोर प्रिंस की पकड़ से मुक्त न हो सका। प्रिंस की माँ ने शोर मचाकर पड़ोसियों को बुलाया। चोर ने प्रिंस को उस स्थान तक खींचकर ले जाने का प्रयास किया जहाँ दरवाजे-खिड़कियाँ तोड़ने के औजार पड़े थे। प्रिंस ने अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे हिलने भी नहीं दिया। इसी बीच पड़ोसी वहाँ आ पहुँचे।

इस तरह प्रिंस ने अपने नाम के अनुरूप अपनी हिम्मत व साहस से राजकुमार की तरह ही विजय प्राप्त की। उन्हें वर्ष २००० का राष्ट्रीय बाल वीरता पुरस्कार प्रधानमंत्री जी के हाथ दिल्ली में प्रदान किया गया।

चन्दूबा सोधा- पिता तथा भाई की जान बचाई

गुजरात राज्य के कच्छ जिले में गाँधीधाम नाम का सुन्दर नगर है। वहाँ के सहकारी बैंक की शाखा के चौकीदार का नाम था सरदार सिंह सोधा। चौकीदार का पूरा परिवार बैंक परिसर में ही रहता था।

आधी रात के बाद लगभग दो बजे का समय था। कई लोग चौकीदार को जगा रहे थे। जब चौकीदार की नींद खुली तो सामने का दृश्य देखकर वह घबरा गया। एक व्यक्ति ने कड़कदार आवाज में बैंक की चाबियों की माँग की। शोर गुल सुनकर उसका पुत्र धीरूबा भी जाग गया था।

चौकीदार के पास चाबियाँ नहीं थीं। बदमाशों ने मिलकर सरदार सिंह सोधा को रस्सी से बाँध कर शौचालय में बन्द कर दिया। अब वे खिड़की वाली ग्रिल तोड़ने लगे। इधर सरदार सिंह लगातार प्रयास कर रहे थे कि किसी तरह छूटूँ पर सम्भव नहीं था। बदमाश अपने कार्य में मग्न थे। चौकीदार ने सहायता हेतु चिल्लाना शुरू किया। चिल्लाने की आवाज ग्रिल काटते बदमाशों के कानों तक पहुँच गयी।

बदमाशों के मुखिया ने क्रोधित होकर कहा, 'अरे, पहले जाकर इसे चुप कराओ।' दो बदमाश दौड़कर आये और धमकाते हुए बोले, "मना किया था न कि कोई हरकत मत करना। बात सीधे नहीं समझ आती तो ले..." और एक ने गोली चला दी। गोली का निशाना चूक गया किन्तु दूसरे ने लोहे की छड़ से सरदार के सिर पर वार किया और वे घायल हो गये।

शोरगुल सुनकर बेटी चन्दूबा की आँख खुल गयी। अपने पिताजी की आह भरी आवाज सुनकर वह बाहर आयी और पिता तथा भाई दोनों को बदमाशों से भिड़ा हुआ देखा। वह गेट पर जाकर सहायता के लिए जोर-जोर से चिल्लाने लगी।

बदमाश समझ गये कि अब यहाँ रुकना ठीक नहीं है। उन्होंने सरदार सिंह और धीरूबा को शौचालय में बन्द कर दिया और तेजी से भाग निकले।

बदमाशों को भागते देखकर चन्दूबा तुरन्त वापस आ गई। उसने शौचालय का दरवाजा खोला। उसके पिता के सिर से लगातार खून बह रहा था। चन्दूबा की आवाज सुनकर अनेक लोग वहाँ आ गये थे। सरदार सिंह को चिकित्सालय पहुँचाया गया।

उधर दो बदमाशों को पुलिस ने दबोच लिया। सभी लोग चन्दूबा की बहादुरी तथा चालाकी की प्रशंसा कर रहे थे। चन्दूबा सोधा को वर्ष २००० का राष्ट्रीय बाल वीरता पुरस्कार प्रधानमंत्री जी द्वारा देश की राजधानी नई दिल्ली में प्रदान किया गया।

यह कीजिए- क्या आप अपने गाँव, नगर, प्रदेश या देश-विदेश के भी ऐसे और बालवीरों को जानते हैं जो अपने सकारात्मक असाधरण कार्यों के कारण शेष बच्चों के लिए भी प्रेरक सिद्ध हुए। यदि हैं, तो उनके प्रेरक प्रसंग संकलित कर सहपाठी मित्रों से उनकी चर्चा कीजिए। यदि नहीं, तो अपनी खोज जारी रखिए। ऐसे प्रेरक प्रसंग हमें सिद्धांतों एवं शिक्षाओं को सरलता से सिखा देते हैं।

८. हमारी संस्कृति का विश्व संचार

thu dh rFkk ijLij ekuoh; lEcU/kks dh bruh lqUnj lokxi.k vkpkj&lafgrk fo'o dh fdlh Hkh èkeZ vFkok laLÑfr esa ugha gS] tSlh fd Hkkjrh; laLÑfr esaA fo|eku gSA og vkt Hkh fo'o dks ekxZn'ku djus esa l{ke gSA

&nk'kZfud çks- ykbZfVukÅ

‘शून्य’ का आविष्कार : विश्व को भारत का उपहार

प्रकृति द्वारा प्रदत्त विकसित मस्तिष्क एवं वाणी के उपहार के कारण मनुष्य संसार में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। अपनी कल्पनाशक्ति एवं दूरदर्शिता के कारण मनुष्य में सदैव आवश्यकता एवं रुचि की वस्तुओं के संग्रह करने की प्रवृत्ति रही है। सुरक्षा की दृष्टि से मानव ने संगृहीत वस्तुओं को गिनने का प्रयास किया। इस कारण गणन प्रणाली तथा गणितशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। प्रारम्भिक गणना प्राकृतिक संख्याओं पर आधारित होने के कारण सीमित थी, किन्तु शून्य के आविष्कार ने इसे विस्तृत रूप प्रदान किया।

भारत में गणना के प्रमाण विश्व में सर्वप्रथम वेदांग ज्योतिष में ईसा से १४०० वर्ष पूर्व प्राप्त होते हैं। इसमें की गई कालगणना में बड़ी परिमाण वाली संख्याओं का प्रयोग हुआ। यहाँ नक्षत्रों की परस्पर दूरियों का निर्धारण किया गया। बड़ी दूरियाँ व संख्याएँ बिना शून्य के प्रयोग के कलित नहीं की जा सकती थीं।

आर्यभट्ट ने आर्किमिडीज व कॉपरनिकस से बहुत पहले बता दिया था कि पृथ्वी का आकार गोल है और यह अपनी धुरी पर घूमती है। अपने ग्रन्थ आर्यभट्टीयम् में इन्होंने गणना में शून्य का प्रयोग करते हुए लिखा, ‘स्थानात् स्थानं दश गुणम् स्यात्’ अर्थात् संख्या के आगे - शून्य का प्रयोग इसके मान को दस गुणा कर देता है। शून्य के आविष्कार का श्रेय ब्रह्मगुप्त को दिया जाता है, जिसे आर्यभट्ट ने प्रसिद्ध किया। ईस्वी सन् ६२८ में भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ ‘ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त’ में शून्य की सैद्धान्तिक एवं प्रामाणिक विवेचना की। अतः शून्य का आविष्कर्ता ब्रह्मगुप्त को माना गया।

गणित के विकास में शून्य के योगदान को देखकर स्पष्ट है कि भारत द्वारा शून्य की खोज, विश्व को प्रदत्त एक अप्रतिम उपहार है।

भरत का ननिहाल : कैकय देश

गंधार देश (आज का अफगानिस्तान) पार करने पर कैकय देश (आज का ईरान) आता है। भारत का इस ईरान अर्थात् कैकय देश से अत्यधिक निकटवर्ती नाता है। पराक्रमी रघुवंशी राजा दशरथ की पत्नी एवं भरत की माता कैकेयी - कैकय नरेश अश्वपति की कन्या थीं। ईरान की प्राचीन संस्कृति वैदिक आर्य संस्कृति ही थी। कैकय देश (ईरान) के लोग सूर्यपूजक / शौर्य-पन्थ-उपासक ही थे। प्राचीन ऋषियों के समान वहाँ भी ‘मय’ नामक उपाध्याय का वर्ग था। ये अग्निपूजा करते थे। दूध, घी, धान्य पदार्थों का हवन करते थे।

ऋग्वेद में इस प्रदेश के लोगों का उल्लेख आता है- पृथ, परशु आदि नामों से। कालिदास के ग्रन्थ ‘रघुवंशम्’ में विश्वविजय यात्रा में भी इस प्रदेश का वर्णन है। काल के प्रवाह में संघर्षरत ईरान (आर्यान) के पारसी अथवा “परशु” समाज में हमें आज भी वेदकालीन संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

भारतीय योग की विश्व को देन

'करें योग, रहें निरोग'

प्राचीन भारतीय विद्या के रूप में आज योग की सर्वत्र चर्चा है। विश्व भर में योग के प्रति तेजी से जिज्ञासा जाग्रत हो रही है। स्थान-स्थान पर भारत से गये हुए योगाचार्यों द्वारा केन्द्र खोले जा चुके हैं। जहाँ सैकड़ों व्यक्ति योग का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा हम अपने शारीरिक अवयवों को सशक्त, इन्द्रियों को नियन्त्रित, मन को एकाग्र, भावनाओं को सन्तुलित, प्राण को अनुशासित और बुद्धि को सबल बनाकर उसे अहंकार, द्वेष आदि से मुक्त कर आत्मिक निर्मलता प्रदान कर सकते हैं।

योग एक विकसित विज्ञान है, केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है। इसकी मुद्राएँ तथा आसन जहाँ शरीर को सशक्त, नीरोग, सुडौल तथा रोगनिरोधक क्षमतायुक्त बनाते हैं वहीं प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि मानसिक एकाग्रता एवं बुद्धि को प्रखरता प्रदान करते हैं। यम, नियमादि का अभ्यास चारित्रिक विकास में योगदान करता है।

योग प्रार्थना

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेनं।
योऽपाकरोतं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिर्प्राञ्जलिरानतोस्मि॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अष्टांग योग अर्थात् योग के आठ अंग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

पाँच यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह;

पाँच नियम – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान।

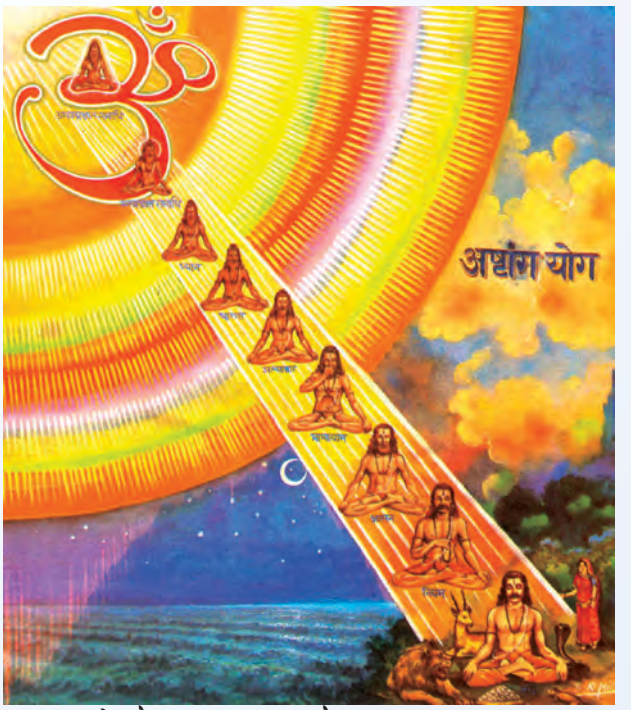

योग संकल्प –

- योगाभ्यास के बिना भोजन नहीं।
- थाली में जूठन नहीं छोड़ना।
- एक दुर्गुण हटाने का संकल्प लेना।
- जैसा चिंतन वैसा व्यक्तित्व।
- सूर्योदय के पूर्व जागना।
- नियमित स्वाध्याय।
- प्रत्येक कार्य पूर्ण जागरुकता के साथ करना।
- तामसिक भोजन कभी नहीं करना।

प्रतिवर्ष २१ जून को मनाया जाने वाला अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस भारत के गौरव का विषय है।

खगोल विज्ञान की देन

"जिस समय तक पश्चिम यह सोच रहा था कि शायद ब्रह्माण्ड ६००० वर्ष पुराना है उससे पहले ही भारत उसकी आयु युगों में आँक रहा था। भारत जानता था कि आकाशगंगाओं की संख्या इतनी है जितने कि गंगा के तट पर फैले रेत के कण। ब्रह्माण्ड इतना विस्तृत है कि आधुनिक खगोल विज्ञान उसकी तहों में बिना कोई विशेष मानसिक उद्वेग उत्पन्न किये, खो जाता है।"

- ह्यूस्टन स्मिथ (अमेरिका)

विभिन्न ग्रहों की दूरी - आर्यभट्ट ने सूर्य से विविध ग्रहों की दूरी के बारे में बताया है। वह आजकल के माप से मिलता-जुलता है। पृथ्वी से सूर्य की दूरी (१.५x१०८ कि.मी.) है। इसे एयू (खगोलीय इकाई - Astronomical Unit) कहा जाता है।

ग्रह	आर्यभट्ट का मान	वर्तमान मान
बुध	०.३७५ एयू	०.३८७ एयू
शुक्र	०.७२५ एयू	०.७२३ एयू
मंगल	१.५३८ एयू	१.५२३ एयू
गुरु	५.१६ एयू	५.२० एयू
शनि	९.४१ एयू	९.५४ एयू

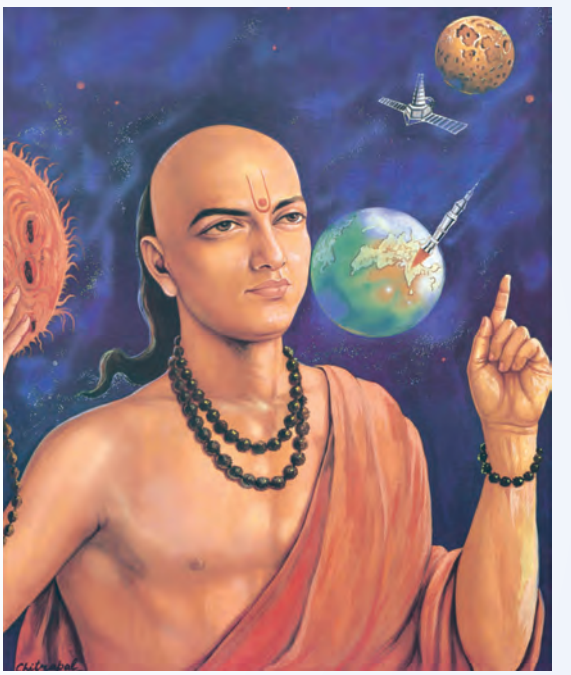

प्राचीन ब्रह्माण्डवेत्ता-आर्यभट्ट

गोस्वामी तुलसीदास जी कृत हनुमान चालीसा की चौपाई - 'जुग सहस्र जोजन पर भानु' के आधार पर पृथ्वी से सूर्य की दूरी की गणना सिद्ध की गई है। सामान्य अर्थ है कि एक युग सहस्र योजन की दूरी पर सूर्य है।

ब्रह्माण्ड का विस्तार

ब्रह्माण्ड की विशालता का भी हमारे पूर्वजों ने अनुभव किया था। आजकल ब्रह्माण्ड की विशालता नापने हेतु प्रकाश वर्ष की इकाई का प्रयोग होता है। प्रकाश एक सैकेण्ड में ३ लाख किलोमीटर की गति से यात्रा करता है। इस गति से भागते हुए एक वर्ष में जितनी दूरी प्रकाश तय करेगा उसे प्रकाश वर्ष कहा जाता है। इस पैमाने से आधुनिक विज्ञान बताता है कि हमारी आकाशगंगा जिसे Milky way (मन्दाकिनी) कहा जाता है, इसकी लम्बाई एक लाख प्रकाश वर्ष है तथा चौड़ाई दस हजार प्रकाश वर्ष है।

इस आकाशगंगा के ऊपर स्थित एण्ड्रोला नामक आकाशगंगा हमारी आकाशगंगा से २० लाख २० हजार प्रकाश वर्ष दूर है और ब्रह्माण्ड में ऐसी करोड़ों आकाशगंगाएँ हैं।

विश्वबन्धुत्व

हिन्दू जीवनदृष्टि सदैव उदार रही है। वह सब में एक ही परम आत्मा के दर्शन करती है, सभी जीवों को ईश्वर का अंश मानती है। इसीलिए हिन्दू समाज दूसरे पन्थ के मानने वालों से घृणा नहीं करता वरन् उन्हें भी अपने साथ रहने का अवसर देता है। उनके मन में 'यह मेरा, वह पराया है', यह भाव नहीं है क्योंकि ऐसा मानने वाले संकुचित मन वाले कहे जाते हैं। हिन्दू धर्म की घोषणा है – ''एकम् सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।'' कबीर दास जी ने कहा– ''एकै पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।''

हमारे परिवारों में चींटी को आटा या गुड़, पक्षी को दाना तथा सर्प को दूध पिलाते हैं। पहली रोटी गाय को, अन्तिम रोटी कुत्ते को, यह हिन्दू परिवार की परम्परा है। चंदा मामा, सूरज दादा, बिल्ली मौसी, गाय माता हिन्दू समाज की मान्यता है। शांति मंत्र में आकाश, पृथ्वी, जल-स्थल ही नहीं, हम समग्र ब्रह्माण्ड में शान्ति और मंगल की कामना करते हैं। हिन्दू जीवन-दृष्टि सदैव से यही रही है – 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।' (सभी लोग सुखी हों)। १८९३ ई॰ में जब स्वामी विवेकानन्द ने 'मेरे अमेरिकी बहनो और भाइयो' कहा तो सब अचम्भित होकर ताली बजाते रहे। पूरे विश्व के लोगों को भाई-बहन मानना हमारे विश्वबन्धुत्व के भाव को दर्शाता है।

इण्डोनेशिया, मलयेशिया, गुयाना में श्रीकृष्ण से जुड़े चित्र, मॉरीशस में स्वामी शिवानन्द, चीन में बुद्ध, बर्लिन में दुर्गा, थाइलैंड, चीन, जापान, मंगोलिया, लाओस, वियतनाम में हिन्दू प्रतीक एवं हिन्दू संस्कृति के चिह्नों का अंकित होना हमारे विश्वबन्धुत्व का प्रसार ही तो है।

यूनानी मुद्राओं पर अंकित हिन्दू संस्कृति के प्रतीक चिह्न, कोलम्बिया में अगस्त्य के नाम पर सान आगुस्तिन पवित्र नगर, बेबीलोन में कर्ण की कथा तथा कश्यप भूमि कैस्पियन सागर एवं साइबेरिया रूस में बसा भारत है। मलयद्वीप और यवद्वीप (मलाया और जावा) में साहित्य, परम्परा और काव्य पर भारतीय संस्कृति का अमिट प्रभाव है। स्यामदेश का राष्ट्रीय ग्रन्थ रामायण है। लाओस (लवदेश) में शालिवाहन संवत् तथा जावा में प्रचलित शक-काल गणना हमारे विश्वबन्धुत्व के अमिट प्रभाव को दर्शाता है।

भारत के ज्ञान-विज्ञान का प्रसार विश्व में हुआ। इसका आधार बन्धुत्व ही था। हमारे पूर्वज शस्त्र लेकर नहीं शास्त्र (ज्ञान) लेकर, शान्ति का सन्देश देने गए। विश्व के लोगों को ज्ञानवान् एवं सभ्य बनाया। भारत ने शून्य का ज्ञान एवं वर्तमान अंक पद्धति विश्व को दी। यह विश्व के लिए हमारा बन्धुत्व भाव ही था।

ईरान का पुराना नाम आर्यान् था। पारसियों के धर्मग्रन्थ ने कहा "हम आर्यों की कीर्ति के प्रति आहुति प्रदान करते हैं।"

हमारे यहाँ किसी भी अनुष्ठान के पूर्ण होने पर उद्घोष होता है, "धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो।" यह उद्घोष हमारे विश्वबन्धुत्व के भाव को पुष्ट करता है। भारत माता की जय तब ही पूर्ण मानी जाती है जब वह इस उद्घोषणा के पूर्व चरणों में धर्म की जय, अधर्म का नाश, प्राणियों में सद्भावना, विश्व का कल्याण को प्राप्त कर ले।

भारत की विश्व को देन : वैदिक गणित के सूत्र

वैदिक गणित की क्रियाएँ जादू सी लगती हैं और निस्संदेह मानव मस्तिष्क की गणितीय गणना को निरन्तर परिष्कृत करती हैं। यह जादू वैदिक ज्ञान की शोधपरक प्रक्रिया से प्राप्त हुआ है। आज जिस गणितीय चमत्कार से सम्पूर्ण विश्व आश्चर्यचकित है इसका श्रेय गोवर्धनमठ के शंकराचार्य पूज्य स्वामी भारतीकृष्णतीर्थ को जाता है। भारत का प्राचीन वैदिक गणित ज्ञान कितना प्रभावी है, इसके बारे में प्रो॰ जिन्सबर्ग कहते हैं कि लगभग ७७० ई॰ में उज्जैन के एक हिन्दू विद्वान् कंक को बगदाद के प्रसिद्ध दरबार में अब्बासईद खलीफा अल मन्सूर ने आमन्त्रित किया था। इस प्रकार हिन्दू अंक पद्धति अरब पहुँची। इसके द्वारा ज्योतिष विज्ञान तथा गणित जैसे विषयों को अरब के विद्वानों को पढ़ाया। इनकी सहायता से उन्होंने गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त का अरबी में अनुवाद किया। वैदिक गणित अपनी सरलता और रोचकता के कारण मानव मन में जिज्ञासा का भाव उत्पन्न करता है। अभ्यास से यह जागरुकता मानव मन की अतिचेतना को जाग्रत कर देती है। इस प्रकार होता है मानव के व्यक्तित्व तथा दिव्यता का विकास। आज सम्पूर्ण विश्व के गणितज्ञ भारत के इस वैदिक ज्ञान को सीखने में लगे हैं। वैदिक गणित के १६ सूत्र एवं उनके अर्थ इस प्रकार हैं –

१.	एकाधिकेन पूर्वेण	–	पहले से एक अधिक के द्वारा।
२.	निखिलं नवतश्चरमं दशतः	–	सभी नौ में से परन्तु अन्तिम दस में से।
३.	ऊर्ध्वतिर्यग्भ्याम्	–	सीधे (खड़े) और तिरछे दोनों प्रकार से।
४.	परावर्त्य योजयेत्	–	पक्षान्तरण कर उपयोग करें ।
५.	शून्यं साम्यसमुच्चये	–	समुच्चय समान होने पर शून्य होता है।
६.	आनुरूप्ये शून्यमन्यत्	–	अनुरूपता होने पर दूसरा शून्य होता है।
७.	संकलनव्यवकलनाभ्याम्	–	जोड़कर और घटाकर ।
८.	पूरणापूरणाभ्याम्	–	अपूर्ण को पूर्ण करके।
९.	चलनकलनाभ्याम्	–	चलन-कलन के द्वारा।
१०.	यावदूनम्	–	जितना कम है अर्थात् विचलन।
११.	व्यष्टिसमष्टिः	–	एक को पूर्ण और पूर्ण को एक मानते हुए।
१२.	शेषाण्यङ्केन चरमेण	–	अंतिम अंक से अवशेष को ।
१३.	सोपान्त्यद्वयमन्त्यम्	–	अंतिम और उपान्तिम का दुगुना।
१४.	एकन्यूनेन पूर्वेण	–	पहले से एक कम के द्वारा ।
१५.	गुणितसमुच्चयः	–	गुणितों का समुच्चय ।
१६.	गुणकसमुच्चयः	–	गुणकों का समुच्चय ।

संस्कृति बस इतिहास नहीं है, नहीं कल्पना यह थोथी।
बस पढ़कर रख देने जैसी, नहीं कहानी की पोथी॥
संस्कृति पवन प्रवाह प्राणमय, अनुभवगम्य सदा चैतन्य।
श्वांस बना अन्दर जो धारे, पाये सांस्कृतिक बोध अनन्य॥

❑❑❑

निवेदन

प्रिय भैया-बहिनों से ...

यह पुस्तक तो आपने पूरी पढ़ ली। पुस्तक केवल पढ़ने और संभाल कर रख लेने के लिए तो नहीं होती आगे विचार करने के लिए यदि हमने उसमें से कुछ नहीं निकाला तो पुस्तक की उपयोगिता क्या हुई? इसलिए, कुछ बातें आपके सोचने एवं करने के लिए ...

यह तो छोटी-सी पुस्तक है। कितना भी बड़ा ग्रन्थ क्यों न हो, उसमें भी विषयवस्तु की सीमा तो रहती ही है। उस पर संस्कृति जैसा व्यापक विषय कुछ पृष्ठों की मर्यादा में कैसे समा सकता है? इसलिए सबसे पहले तो अपने ध्यान में यह आना चाहिए कि यह पुस्तक संस्कृति के कुछ प्रमुख अंगों का परिचय मात्र है, सम्पूर्ण संस्कृति बोध नहीं। कुछ जानकारियाँ एवं तथ्य आपके ध्यान में आ गए, अब उनके विस्तार में जाने का काम तो आपको ही करना है – स्वाध्याय द्वारा, चर्चा द्वारा, चिंतन द्वारा।

दो शब्द प्रयोग में आते हैं – सभ्यता और संस्कृति। प्राय: दोनों को पर्यायवाची समझा जाता है, जबकि दोनों में अनेक अन्तर हैं। सभ्यताएँ बदलती हैं, बनती-बिगड़ती हैं। संस्कृति का आधार स्थायी तथा शाश्वत होता है। सड़क बनाने की एक प्रक्रिया होती है – नाप-जोख की जाती है, निर्माण सामग्री आती है, सरकार या नगर पालिका धन देती है और अभियन्ताओं के मार्गदर्शन-निरीक्षण में श्रमिक सड़क बनाते हैं। इसके विपरीत गाँव में खेतों के बीच से होकर मन्दिर या तालाब तक जाने वाली पगडण्डी कोई बनाता नहीं, चलने वालों के पैरों से स्वयं बन जाती है। सभ्यता सड़क है, संस्कृति पगडण्डी जोकि उसका पालन करने वालों ने स्वयं बना ली है। इसमें सभ्यता का भी अंश होता है, किन्तु पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज-परम्पराओं, मान बिन्दुओं-श्रद्धा केन्द्रों के प्रति समान आस्था समाज को एकजुट करती है। गंगा उत्तर भारत में बहती है किन्तु सुदूर दक्षिण भारत ही नहीं बल्कि विदेशों में भी जा बसे भारतीय मूल के समाज के लिए श्रद्धा का केन्द्र है। संस्कृति का आधार भावात्मक एकात्मता है जो हमें एक-दूसरे से जोड़कर रखती है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत अपनी कविता 'आस्था' में लिखते हैं – "प्रखर बुद्धि से भले सभ्यता हो नव निर्मित, संस्कृति के निर्माण के लिए हृदय चाहिए।"

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो॰ किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं, "संस्कृति संस्कार से बनती है जबकि सभ्यता नागरिकता का रूप है।"

अत: अपने लिए विचार करने का दूसरा विषय है, क्या हम सभ्यता और संस्कृति को अलग-अलग ठीक प्रकार से समझते हैं।

आजकल मंच पर होने वाली प्रस्तुतियों – नृत्य, नाट्य, गायन-वादन, अभिनय को 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' कहा जाता है। यदि उनमें अपने देश की संस्कृति की झलक नहीं है तो वे रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ मात्र हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम तो नहीं।

वीर सावरकर लिखते हैं, ''विश्व रचना परमात्मा द्वारा सम्पन्न हुई है। संस्कृति मानव प्रकृति द्वारा की गई उसकी अनुकृति मात्र है। संस्कृति का सर्वोत्तम रूप प्रकृति और मानव पर मानव की आत्मा की पूर्ण-विजय प्राप्ति ही है।'' अर्थात् अपनी संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं को समझकर और उन्हें जीवन व्यवहार में लाकर हम एक प्रकार से परमात्मा के कार्य का अनुकरण ही कर रहे होते हैं।

देशभर के अनेक विद्वानों ने इस पुस्तक में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जो जानकारी संकलित कर हमारे हाथों में सौंपी है, वह केवल रट लेने और परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए नहीं है। हम इस सूत्र रूप में प्राप्त जानकारियों के आधार पर इस दिशा में और अधिक खोजें-जानें-समझें-समझायें, तभी इस श्रम की सफलता होगी। ज्ञानदायिनी माता सरस्वती हमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान करें, यही प्रार्थना।

– महामंत्री

जगन्नाथपुरी
ओडिशा

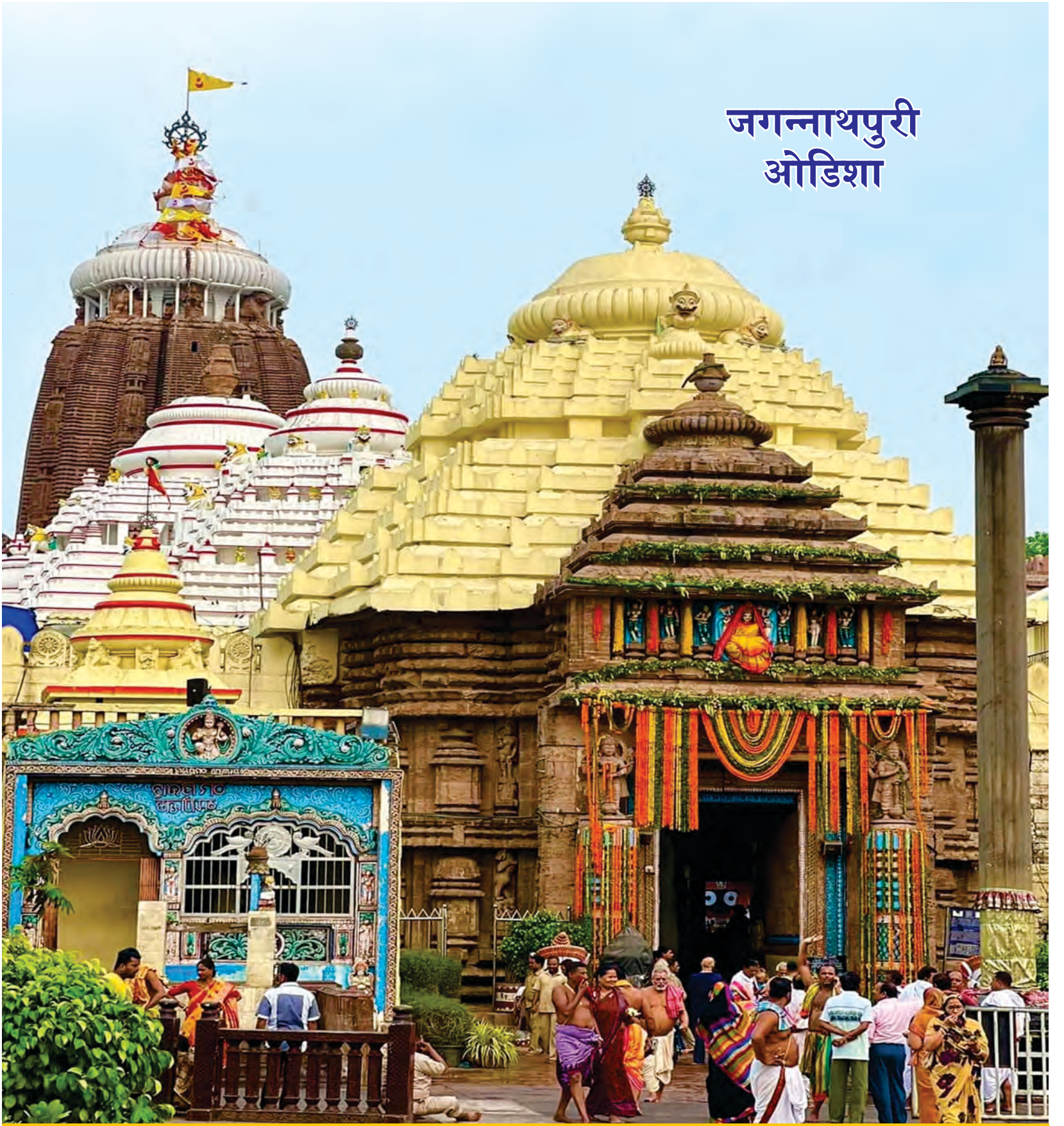

प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

दूरभाष : ०१७४४-२५१९०३, २७०५१५ मोबाइल/व्हाट्सएप्प : ९८१२५२०३०१

sgp@samskritisansthan.org www.samskritisansthan.com vidyabhartikurukshetra vidyabhartisss YouTube vbsss kkr

प्रकाशन वर्ष : विक्रम संवत् २०८१, युगाब्द ५१२६ (सन् 2024 ई॰)